कार्ल मार्क्स

संस्मरण और लेख

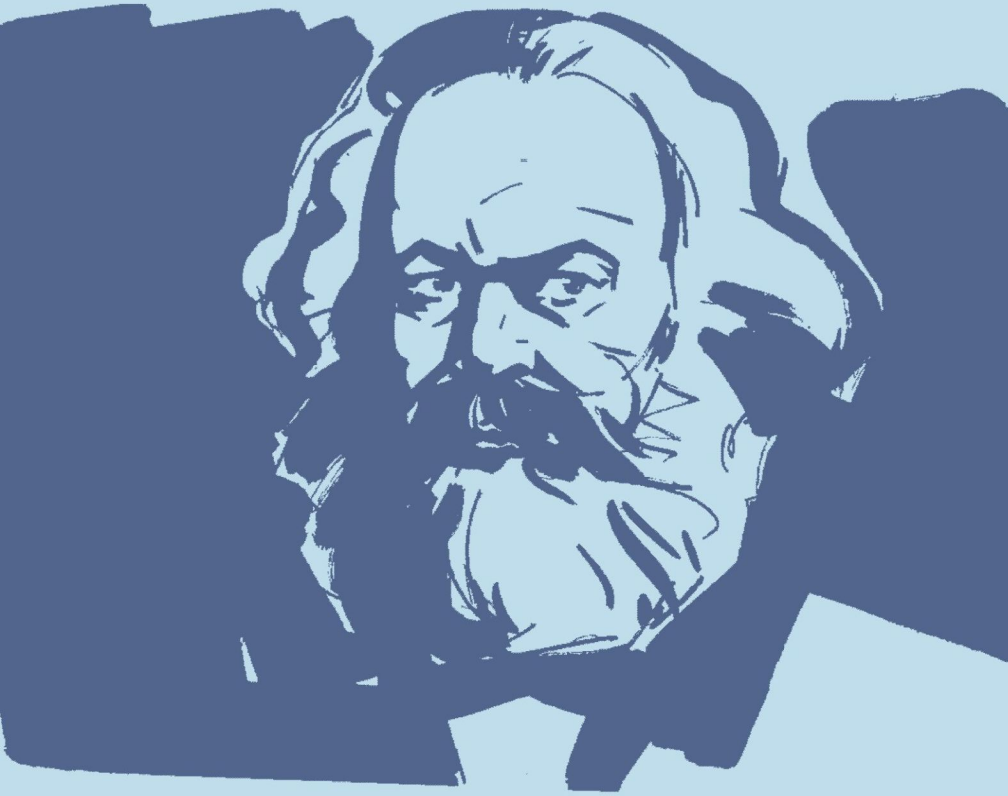

फ़्रेडरिक एंगेल्स
व्ला. इ. लेनिन
पॉल लफ़ार्ग
विल्हेल्म लीबनेख़्त

कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख

यह पुस्तक राहुल फ़ाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित की गई है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाई जा रही है। अगर आप पीडीएफ की बजाय प्रिण्ट कॉपी से पढ़ना चाहते हैं तो जनचेतना से खरीद सकते हैं।

ऑनलाइन लिंक : http://janchetnabooks.org/product/karl-marx-sansmarna-aur-lekh/

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Lucknow-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविताएं, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ में
- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- हर रविवार किसी महत्वपूर्ण पुस्तक की पीडीएफ

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए इस लिंक का इस्तेमाल करें

www.mazdoorbigul.net/whatsapp

जुड़ने में समस्या आने पर अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें – 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख

कार्ल मार्क्स

संस्मरण और लेख

फ़्रेडरिक एंगेल्स
व्ला. इ. लेनिन
पॉल लफ़ार्ग
विल्हेल्म लीबनेख़्त

राहुल फ़ाउण्डेशन
लखनऊ

ISBN 978-93-80303-29-1

मूल्य : रु. 35.00

पहला संस्करण : जनवरी 2010

प्रकाशक : राहुल फ़ाउण्डेशन
69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज,
लखनऊ–226 006 द्वारा प्रकाशित

आवरण : रामबाबू

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस–28, शक्तिनगर, लखनऊ

Karl Marx: Sansmaran aur Lekh

प्रकाशकीय

प्रस्तुत संकलन में कार्ल मार्क्स के जीवन और शिक्षाओं के बारे में तीन लेख और उनके समकालीनों के दो संस्मरण शामिल किये गये हैं।

फ़्रेडरिक एंगेल्स का लेख 'कार्ल मार्क्स' और मार्क्स की क़ब्र पर दिया गया उनका भाषण तथा व्लादीमिर लेनिन का लेख 'कार्ल मार्क्स' मज़दूर वर्ग की मुक्ति का दर्शन देने वाले इस महान विचारक के जीवन और कार्यों की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित जानकारी देते हैं। मार्क्स के सहयोगी और मज़दूर आन्दोलन के दो महान नेताओं पॉल लफ़ार्ग तथा विल्हेल्म लीबनेख़्त के आत्मीय संस्मरण मार्क्स के व्यक्तित्व के अन्तरंग पहलुओं को सामने लाने के साथ ही उनके सोचने और काम करने के तरीक़े के बारे में भी बहुत कुछ सीखने और जानने में मदद करते हैं।

हमें आशा है कि यह छोटा-सा संकलन पाठकों में कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा के बारे में और गहराई तथा विस्तार से जानने की दिलचस्पी जगाने में सफल होगा। हमारा प्रयास रहेगा कि जल्दी ही हम मार्क्स और एंगेल्स के अनेक संस्मरणों को एक साथ एक बड़े संकलन में प्रकाशित करें।

– राहुल फ़ाउण्डेशन

15.1.2010

विषय सूची

कार्ल मार्क्स
फ़्रेडरिक एंगेल्स 9

कार्ल मार्क्स की क़ब्र पर भाषण
फ़्रेडरिक एंगेल्स 22

कार्ल मार्क्स
व्ला. इ. लेनिन 25

मार्क्स मेरे मानसपट पर
पॉल लफ़ार्ग 31

मार्क्स के संस्मरणों के कुछ अंश
विल्हेल्म लीबनेख़्त 51

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कार्ल मार्क्स

समाजवाद, और इस तरह वर्तमान काल के पूरे मज़दूर आन्दोलन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने वाले सबसे पहले व्यक्ति, कार्ल मार्क्स का जन्म 1818 में त्रियेर नामक नगर में हुआ था। उन्होंने पहले बोन और बर्लिन में क़ानून का अध्ययन किया, लेकिन जल्दी ही वह इतिहास और दर्शन को अपना सारा समय देने लगे। 1842 में वह दर्शनशास्त्र के सहायक प्रोफ़ेसर बनने ही वाले थे कि फ़्रेडरिक-विल्हेल्म तृतीय की मृत्यु के बाद छिड़े राजनीतिक आन्दोलन ने उन्हें दूसरे ही रास्ते की ओर मोड़ दिया। उनके सहयोग से राइन प्रदेश के उदारपन्थी पूँजीपतियों के नेता काम्पहाउज़ेन, हान्समान, आदि ने कोलोन में *राइनिश ज़ाइटुंग* (राइनी समाचारपत्र) नामक अख़बार निकाला। 1842 की शरद ऋतु में मार्क्स, जिनके द्वारा राइनी विधानसभा की कार्यवाही की आलोचना ने सब का ध्यान आकर्षित किया था, इस पत्र के प्रधान बना दिये गये। *राइनिश ज़ाइटुंग* हमेशा सेंसर की निगरानी में निकलता था, लेकिन सेंसर-विभाग उससे पार न पा सकता था।* अकसर *राइनिश ज़ाइटुंग* महत्त्वपूर्ण लेख छाप ही लेता। सेंसर अधिकारी के आगे पहले महत्त्वहीन चारा डाल दिया जाता था, जिस पर क़लम चलाने के बाद या तो वह ख़ुद ही थककर हार मान लेता या इस धमकी के सामने झुक जाता कि लेख पास न हुए तो कल अख़बार ही न निकलेगा। यदि *राइनिश ज़ाइटुंग* जैसे दस साहसी अख़बार और होते, जिनके प्रकाशक कम्पोज़िंग पर सौ दो सौ थेलर ज़्यादा ख़र्च करने के लिए तैयार रहते, तो 1843 में ही जर्मनी में सेंसर का काम असम्भव हो जाता। लेकिन जर्मन अख़बारों के मालिक ओछी तबीयत के डरपोक और कूपमण्डूक थे और यह लड़ाई *राइनिश ज़ाइटुंग* अकेले

---

* *राइनिश ज़ाइटुंग* का पहला सेंसर अधिकारी पुलिस कौंसिलर दोल्लेशाल था। यह वही आदमी था जिसने *कोल्निश ज़ाइटुंग* में दान्ते के *डिवाइन कॉमेडी* के फिलेलीथीस (बाद में सैक्सनी का राजा जोहन) द्वारा किये गये अनुवाद के एक विज्ञापन पर यह कहकर कैंची चला दी थी कि हमें ईश्वरीय मामलों को प्रहसन का विषय नहीं बनाना चाहिए।

विद्यार्थी मार्क्स

ही चलाता था। उसने एक के बाद एक सेंसरों को थका डाला, अन्त में उस पर दोहरा सेंसर लगाया गया। एक बार सेंसर किये जाने के बाद केन्द्रीय सरकार का प्रादेशिक प्रतिनिधि उसे फिर देखकर अन्तिम बार सेंसर करता था। लेकिन यह तरीक़ा भी कारगर न हुआ। 1843 के आरम्भ में सरकार ने कहा कि इस अख़बार को क़ाबू में रखना असम्भव है, इसलिए उसने उसे बन्द कर दिया।

इसी बीच मार्क्स ने भावी प्रतिक्रियावादी मन्त्री फ़ॉन वेस्टफ़ॉलेन की बहन जेनी वेस्टफ़ॉलेन से विवाह कर लिया था। वह पेरिस चले गये और वहाँ आ. रूगे के साथ *डाइचे फ़्रांज़ोसिस्शे यारबुख़ेर* (जर्मन-फ़्रांसीसी वार्षिकी) निकालने लगे जिसमें उन्होंने अपनी समाजवादी लेखमाला का श्रीगणेश किया। सबसे पहले उन्होंने *हेगेल के न्यायदर्शन की समालोचना* लिखी। इसके बाद एंगेल्स के साथ मिलकर *पवित्र परिवार। ब्रूनो बावेर और उनकी मण्डली के विरोध में* लिखा। यह रचना उस समय के जर्मन दार्शनिक भाववाद के एक नवीनतम रूप की व्यंग्यात्मक समालोचना थी।

राजनीतिक अर्थशास्त्र और महान फ़्रांसीसी क्रान्ति के इतिहास के अध्ययन में समय लगाने के बावजूद मार्क्स को प्रशा की सरकार पर जब-तब वार करने का मौक़ा मिल जाता था। प्रशा की सरकार ने 1845 में गीज़ो के मन्त्रिमण्डल द्वारा उन्हें फ़्रांस से निकलवाकर बदला लिया। कहा जाता है कि अलेक्ज़ेण्डर फ़ॉन हम्बोल्ट इस काम के लिए बीच में पड़े थे। मार्क्स ने ब्रसेल्स में डेरा डाला और वहाँ 1847 में फ़्रांसीसी भाषा में *दर्शन की दरिद्रता* प्रकाशित की - यह पुस्तक प्रूदों की रचना *दरिद्रता का दर्शन* की आलोचना है। 1848 में उन्होंने *मुक्त व्यापार की विवेचना* प्रकाशित की। इसी समय, अवसर का लाभ उठाकर, उन्होंने ब्रसेल्स में जर्मन मज़दूर समाज की स्थापना की और इस तरह व्यावहारिक आन्दोलन आरम्भ कर दिया। यह आन्दोलन उनके लिए और भी महत्त्वपूर्ण हो गया जब वह और उनके राजनीतिक साथी 1847 में गुप्त कम्युनिस्ट लीग में शामिल हो गये, जो कई साल पहले से चल रही थी। अब उसका ढाँचा पूरी तरह बदल दिया गया। पहले यह संस्था कमोबेश षड्यन्त्रकारी संस्था थी, लेकिन अब वह कम्युनिस्ट प्रचार का एक सीधा-सादा संगठन बन गयी। यदि वह गुप्त रूप से कार्य करती थी तो केवल इसलिए कि दूसरा कोई चारा न था। जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी का यही **पहला** संगठन था। जहाँ भी जर्मन मज़दूरों की यूनियनें थीं, वहाँ लीग भी थी। इंग्लैण्ड, बेल्जियम, फ़्रांस और स्विट्ज़रलैण्ड की प्राय: सभी यूनियनों के और जर्मनी जैसी बहुत-सी यूनियनों के नेता लीग के सदस्य थे। जर्मनी के उभरते हुए मज़दूर आन्दोलन में लीग का बहुत बड़ा हाथ था। इसके सिवा हमारी

लीग ने ही सबसे पहले समूचे मज़दूर आन्दोलन के अन्तरराष्ट्रीय चरित्र पर ज़ोर दिया और उसे व्यवहार में भी चरितार्थ किया – उसके सदस्यों में अंग्रेज़, बेलजियन, हंगेरियन, पोल, आदि थे और वह मज़दूरों की अन्तरराष्ट्रीय सभाएँ भी आयोजित करती थी – विशेषकर लन्दन में।

1847 में हुई दो कांग्रेसों में लीग का कायापलट हो गया। दूसरी कांग्रेस ने निश्चय किया कि पार्टी के मूल सिद्धान्तों को निरूपित किया जाए और उन्हें एक घोषणापत्र के रूप में प्रकाशित किया जाये। इस घोषणापत्र को तैयार करने का दायित्व मार्क्स और एंगेल्स को सौंपा गया। इस प्रकार फ़रवरी क्रान्ति के कुछ ही दिन पहले, 1848 में *कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र** प्रकाशित हुआ। तब से इस घोषणापत्र का अनुवाद यूरोप की लगभग सभी भाषाओं में हो चुका है।

डाइचे ब्रसेलेर-ज़ाइटुंग (जर्मन-ब्रसेल्स समाचारपत्र) ने – जिसके प्रकाशन में मार्क्स का भी हाथ था – पितृदेश में पुलिसराज की नेमतों का बेरहमी से परदाफ़ाश किया। इससे रुष्ट होकर प्रशा की सरकार ने मार्क्स को फिर निकलवाने की कोशिश की, लेकिन यह कोशिश बेकार गयी। किन्तु जब फ़रवरी क्रान्ति के फलस्वरूप ब्रसेल्स में भी जन-आन्दोलन शुरू हुआ और बेल्जियम में आमूल परिवर्तन आसन्न ज्ञात हुआ तो वहाँ की सरकार ने बिना किसी हिचकिचाहट के मार्क्स को गिरफ़्तार कर देश से बाहर भेज दिया। इसी बीच फ़्रांस की अस्थायी सरकार ने फ़्लोकोन की मार्फ़त उन्हें पेरिस लौटने का बुलावा भेजा और मार्क्स ने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

पेरिस में उन्होंने वहाँ बसे जर्मनों के बीच प्रचलित इस छलपूर्ण योजना का विशेष रूप से विरोध किया कि फ़्रांस में काम करनेवाले जर्मन मज़दूरों के हथियारबन्द जत्थे बनाये जायें और उन्हें जर्मनी भेजकर वहाँ क्रान्ति करायी जाये और जनतन्त्र की स्थापना करायी जाये। एक तो जर्मनी को अपनी क्रान्ति स्वयं ही करनी थी; दूसरे, अस्थायी सरकार के लामार्तीन जैसे लोग विश्वासघात करके पहले से ही फ़्रांस में स्थापित होनेवाले हर क्रान्तिकारी विदेशी जत्थे को उस सरकार के हवाले करते थे जिसका तख़्ता उसे उलटना था, जैसाकि बेल्जियम और बाडेन में हुआ था।

मार्च की क्रान्ति के बाद मार्क्स कोलोन चले गये और वहाँ उन्होंने *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग (नया राइनी समाचारपत्र)* की स्थापना की। यह समाचारपत्र 1 जून, 1848 से 19 मई, 1849 तक प्रकाशित हुआ। यह एकमात्र ऐसा पत्र था जो उस समय के जनवादी आन्दोलन के अन्दर सर्वहारा दृष्टिकोण

---

* देखें कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स, *संकलित रचनाएँ,* खण्ड-1, भाग-1। – *स.*

का प्रतिनिधित्व करता था, जैसाकि जून 1848 के पेरिस विद्रोह की उसकी खुली हिमायत से स्पष्ट था। समाचारपत्र के प्रायः सभी साझेदार इसी वजह से उससे अलग हो गये। *क्रूज़ ज़ाइटुंग* नामक समाचारपत्र ने *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* पर आक्षेप करते हुए लिखा कि वह "चिम्बोराज़ो* तुल्य धृष्टता" के साथ सम्राट और राज्य के वाइस-रीजेण्ट से लेकर पुलिस के सिपाही तक सभी पवित्र वस्तुओं पर प्रहार करता है और वह भी प्रशा के एक दुर्ग में बैठकर जहाँ 8,000 सिपाहियों का गैरीसन मौजूद है, परन्तु उसका यह लिखना व्यर्थ था। राइनी उदारपन्थी कूपमण्डूक भी जो सहसा प्रतिक्रियावादी बन गये थे, अख़बार पर बहुत गुस्सा हुए, पर यह गुस्सा भी व्यर्थ था। 1848 की शरद में एक लम्बे अरसे के लिए यह समाचारपत्र मार्शल लॉ के अन्तर्गत बन्द कर दिया गया, परन्तु यह भी व्यर्थ रहा। फ़्रैंकफुर्ट स्थित जर्मन राज्य का न्याय मन्त्रालय पत्र के कितने ही लेखों पर आपत्ति प्रकट करते हुए कोलोन के सरकारी वकील को लिखता रहा ताकि उसके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई की जा सके। पर वह भी व्यर्थ। पुलिस की आँखों के सामने ही पत्र बड़े मज़े से सम्पादित और मुद्रित होता रहा। सरकार और पूँजीपतियों पर उसके आक्षेपों की तीव्रता के साथ उसकी प्रतिष्ठा और उसकी बिक्री भी बढ़ती गयी। नवम्बर, 1848 में जब प्रशा में तख़्तापलट हुआ तो *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* ने हर अंक के मुखपृष्ठ पर जनता से अपील की कि टैक्स मत दो और हिंसा का मुक़ाबला हिंसा से करो। 1849 के वसन्त में इस कारण और एक दूसरे लेख के कारण भी जूरी के सामने उस पर मुक़दमा चला, लेकिन वह दोनों बार अपराधमुक्त क़रार दिया गया। अन्त में 1849 में जब ड्रैस्डेन में और राइन प्रान्त में मई विद्रोह दबा दिये गये और काफ़ी बड़े सैन्य दलों को इकट्ठा कर और उनकी लामबन्दी कर बाडेन-फ़ाल्ज़ विद्रोह के विरुद्ध प्रशियाई अभियान शुरू किया गया तब सरकार को यक़ीन हो गया कि अब वह इतनी शक्तिशाली हो गयी है कि *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* को बलपूर्वक दबा सके। उसका अन्तिम अंक लाल स्याही में छपा हुआ 19 मई को प्रकाशित हुआ।

मार्क्स फिर पेरिस चले गये, लेकिन 13 जून 1849 के प्रदर्शन के कुछ हफ़्ते बाद ही फ़्रांसीसी सरकार ने उनसे कहा कि या तो वह ब्रिटनी प्रान्त में जाकर रहें, या फिर फ़्रांस को बिल्कुल ही छोड़ दें। उन्होंने फ़्रांस छोड़ना ही पसन्द किया और लन्दन चले आये, जहाँ तब से बराबर रहते आये हैं।

1850 में उन्होंने हैम्बर्ग से *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* को रिव्यू के रूप में

---

* **चिम्बोराज़ो** दक्षिण अमेरिका के एण्डीज़ पर्वत की सबसे ऊँची चोटियों में है। - *स.*

निकालने का प्रयत्न किया, लेकिन प्रतिक्रियावादियों की निरन्तर बढ़ती हुई हिंसा के कारण उन्हें इससे विरत होना पड़ा। दिसम्बर 1851 में फ़्रांस में तख़्तापलट के बाद ही मार्क्स ने *लूई बोनापार्ट की अठारहवीं ब्रूमेर** प्रकाशित की (न्यूयार्क से 1852 में; दूसरा संस्करण युद्ध के कुछ ही पहले हैम्बर्ग से 1869 में)। 1853 में उन्होंने *कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन* नामक पुस्तक लिखी जो सबसे पहले ब्रांज़ेल में प्रकाशित हुई, इसके बाद बोस्टन में, और फिर अभी हाल में लीप्ज़िग में।

कोलोन में कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों के ख़िलाफ़ फ़ैसला होने के बाद मार्क्स राजनीतिक आन्दोलन से अलग हो गये। दस साल तक वह ब्रिटिश म्यूज़ियम के पुस्तकालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र पर उपलब्ध विपुल सामग्री का अध्ययन करते रहे। दूसरी ओर वह *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून* के लिए लिखते भी रहे। अमेरिका में गृहयुद्ध के आरम्भ तक यह समाचारपत्र न केवल उनके नाम से उनके लेखों को छापता रहा बल्कि उसने यूरोप और एशिया की परिस्थितियों के बारे में मार्क्स के बहुत-से अग्रलेख भी छापे। ब्रिटेन के सरकारी दस्तावेज़ों का विस्तृत अध्ययन करके उन्होंने लार्ड पामर्स्टन के विरोध में जो लेख लिखे, वे लन्दन में पैम्फ़्लेटों के रूप में प्रकाशित हुए।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के उनके वर्षों के अध्ययन के शुरुआत परिणाम के तौर पर 1859 में एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका नाम था *राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास*, भाग 1 (बर्लिन, डुंकेर)। इस पुस्तक में मूल्य-सम्बन्धी मार्क्स के सिद्धान्त की, जिसमें मुद्रा-सम्बन्धी सिद्धान्त सम्मिलित है, पहली सुसंगत व्याख्या मिलती है। इतालवी युद्ध के समय मार्क्स ने लन्दन में प्रकाशित जर्मन अख़बार *दास वोल्क* में बोनापार्टवाद और उस समय की प्रशियाई नीति, दोनों की ही तीव्र आलोचना की। बोनापार्टवाद उस समय उदार मत का रूप धारण किये हुए था और उत्पीड़ित जातियों का उद्धारक होने का स्वांग कर रहा था। और उस समय की प्रशियाई नीति तटस्थता के बहाने गड़बड़ी से अपना उल्लू सीधा करने की घात में थी। इस सम्बन्ध में श्री कार्ल फ़ोग्ट की तीव्र आलोचना करना भी आवश्यक था, क्योंकि वह प्रिंस नेपोलियन (प्लों-प्लों) की आज्ञा से और लूई नेपोलियन से धन पाकर जर्मनी की तटस्थता ही नहीं, उसकी सहानुभूति के लिए भी आन्दोलन कर रहा था। जब फ़ोग्ट ने इसका उत्तर बेहद नागवार और जानबूझकर गढ़े हुए झूठे आक्षेप लगाकर दिया, तब मार्क्स ने *श्रीमान् फ़ोग्ट* (लन्दन, 1860) लिखकर उनको प्रत्युत्तर दिया। इस पुस्तक में उन्होंने फ़ोग्ट

---

* देखें कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स, *संकलित रचनाएँ*, खण्ड-1, भाग-2। - *स.*

और साम्राज्यवादी गुट के दूसरे नक़ली जनवादी लोगों की बख़िया उधेड़कर रख दी। स्वयं फ़ोग्ट को बाह्य और आन्तरिक साक्ष्य के आधार पर दिसम्बर-साम्राज्य से घूस लेने के लिए अपराधी ठहराया गया। दस साल बाद इस बात की पुष्टि भी हो गयी। 1870 में तूलरी में बोनापार्ट के भाड़े के टट्टुओं की एक सूची मिली, जिसे सितम्बर की सरकार ने प्रकाशित किया। उसमें "फ़" अक्षर के नीचे लिखा था - "फ़ोग्ट - अगस्त 1859 में उसे 40,000 फ्रैंक भेजे गये"।

अन्त में 1867 में हैम्बर्ग में मार्क्स की मुख्य कृति *पूँजी। पूँजीवादी उत्पादन की आलोचनात्मक समीक्षा,* खण्ड 1 प्रकाशित हुई। इसमें उनकी आर्थिक-समाजवादी धारणाओं के आधार की व्याख्या है और वर्तमान समाज, पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके फलाफल की उनकी आलोचना की मुख्य बातें हैं। इस युगप्रवर्तक पुस्तक का दूसरा संस्करण 1872 में प्रकाशित हुआ। इस समय इस कृति के लेखक उसके दूसरे खण्ड को सूत्रबद्ध करने में लगे हुए थे।

इस बीच यूरोप के विभिन्न देशों में मज़दूर आन्दोलन इतना ज़ोर पकड़ चुका था कि मार्क्स अपनी चिराकांक्षा को चरितार्थ करने की बात सोच सकते थे यानी एक ऐसे मज़दूर संघ की नींव डालने की बात, जिसमें यूरोप और अमेरिका के सबसे उन्नत देश शामिल हों, जो स्वयं मज़दूरों के तथा पूँजीपतियों और उनकी सरकारों के सामने साकार रूप में समाजवादी आन्दोलन का अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप प्रदर्शित करे, ताकि सर्वहारा वर्ग प्रोत्साहित और संगठित हो और उसके शत्रु आतंकित हों। सेण्ट मार्टिन हॉल, लन्दन में 28 सितम्बर 1864 को रूस द्वारा फिर कुचल डाले गये पोलैण्ड की हमदर्दी में हुई एक आम सभा ने इस सवाल को पेश करने का अच्छा अवसर प्रदान किया। इसका उत्साहपूर्वक स्वागत हुआ। **इण्टरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन (अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ)** की नींव डाली गयी। इस सभा में एक अस्थायी जनरल कौंसिल चुनी गयी, जिसका दफ़्तर लन्दन में रखा गया और इस तथा हेग कांग्रेस तक सभी जनरल कौंसिलों के प्राण मार्क्स ही थे। 1864 की उद्घाटन घोषणा से लेकर 1871 के फ़्रांस में गृह-युद्ध के बारे में चिट्ठी तक इण्टरनेशनल की जनरल कौंसिल ने जितने भी दस्तावेज़ जारी किये, वे सब मार्क्स ने ही लिखे थे। इण्टरनेशनल में मार्क्स के कार्यों का वर्णन स्वयं इण्टरनेशनल के इतिहास का ही वर्णन है, जो यूरोप के मज़दूरों की स्मृति में अब भी जीवित है।

पेरिस कम्यून के पतन ने इण्टरनेशनल को कठिन स्थिति में डाल दिया।

यूरोपीय इतिहास ने उसे एक ऐसे वक़्त के सामने ला दिया गया जब वह सर्वत्र सफल व्यावहारिक कार्य की सम्भावनाओं से वंचित हो चुका था। जिन घटनाओं ने उसे सातवीं महान शक्ति बना दिया था, उन्होंने ही यह भी असम्भव बना दिया था कि वह अपनी जुझारू शक्ति को एकत्र कर मैदान में उतरे और अनिवार्यत: पराजित न हो तथा मज़दूर आन्दोलन को दशाब्दियों पीछे न ठेल दे। इसके सिवा हर तरफ ऐसे तत्त्व उभर रहे थे, जो इण्टरनेशनल की असली हालत को समझे या उसकी तरफ ध्यान दिये बिना ही उसकी अचानक बढ़ी हुई ख्याति का अपने व्यक्तिगत अहंकार या अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे। एक साहसपूर्ण निर्णय करना था और मार्क्स ने ही यह निर्णय किया और हेग कांग्रेस में उसे पास भी करा लिया। एक गम्भीर प्रस्ताव पास कर इण्टरनेशनल ने बाकूनिनपन्थियों के कार्यों के लिए ज़िम्मेदारी लेने से इनकार किया। ये अविवेकी और घिनौने लोग बाकूनिनपन्थियों के ही इर्दगिर्द जमा थे। इसके अलावा यह देखते हुए कि आम प्रतिक्रिया के मुक़ाबले, बिना ऐसे बलिदान दिये, जिनमें मज़दूर आन्दोलन की कमर ही टूट जाती, उन बढ़ी हुई माँगों को पूरा करना, जो उससे की जा रही थीं, और अपनी सामर्थ्य को बनाये रखना असम्भव है – इस वस्तुस्थिति को देखते हुए इण्टरनेशनल अपनी जनरल कौंसिल को अमेरिका में स्थानान्तरित कर कुछ समय के लिए रणभूमि से हट गया। उस समय और उसके बाद भी इस निर्णय की काफ़ी निन्दा की गयी, लेकिन परिणामों ने इस निर्णय का औचित्य भली-भाँति प्रकट कर दिया है। एक ओर इसका फल यह हुआ है कि इण्टरनेशनल के नाम पर जगह-जगह शासन-सत्ता पर अधिकार करने के दुस्साहसिक किन्तु निरर्थक प्रयत्न बन्द हो गये। दूसरी ओर, विभिन्न देशों की समाजवादी मज़दूर पार्टियों का आपस में सम्पर्क बना रहा, जिससे साबित हो गया कि इण्टरनेशनल ने सभी देशों के मज़दूरों के हितों की अभिन्नता और एकजुटता की जो भावना जगायी थी, वह एक अन्तरराष्ट्रीय संघ के औपचारिक बन्धन के बिना भी – जो उस समय पाँवों की बेड़ी बन गया था – व्यक्त हो सकती थी।

आख़िरकार, हेग कांग्रेस के बाद मार्क्स को फिर अपना सैद्धान्तिक कार्य करने के लिए समय और शान्ति मिली। आशा है कि वह शीघ्र ही *पूँजी* का दूसरा खण्ड भी प्रेस के लिए तैयार कर लेंगे।

विज्ञान के इतिहास में मार्क्स ने जिन महत्त्वपूर्ण बातों का पता लगाकर अपना नाम अमर किया है, उनमें से हम यहाँ दो का ही उल्लेख कर सकते हैं।

पहली तो विश्व इतिहास की सम्पूर्ण धारणा में ही वह क्रान्ति है, जो उन्होंने सम्पन्न की। इतिहास के बारे में समूचा दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित था कि सभी तरह के ऐतिहासिक परिवर्तनों का मूल कारण मनुष्यों के परिवर्तनशील विचारों में ही मिलेगा और सभी तरह के ऐतिहासिक परिवर्तनों में सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन ही हैं तथा सम्पूर्ण इतिहास में उन्हीं की प्रधानता है। लेकिन लोगों ने यह प्रश्न न किया था कि मनुष्य के दिमाग़ में ये विचार आते कहाँ से हैं और राजनीतिक परिवर्तनों की प्रेरक शक्तियाँ क्या हैं। केवल फ़्रांसीसी और कुछ अंग्रेज़ इतिहासकारों की नवीनतर शाखा में यह विश्वास बरबस प्रविष्ट हुआ था कि कम से कम मध्ययुग से, सामाजिक और राजनीतिक प्रभुत्व के लिए उदीयमान पूँजीपति वर्ग का सामन्ती अभिजात वर्ग के साथ संघर्ष यूरोप के इतिहास की प्रेरक शक्ति रहा है। मार्क्स ने सिद्ध कर दिया है कि अब तक का सारा इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है, अब तक के सभी विविधरूपी और जटिल राजनीतिक संघर्षों की जड़ में केवल सामाजिक वर्गों के राजनीतिक और सामाजिक शासन की समस्या, पुराने वर्गों द्वारा अपना प्रभुत्व बनाये रखने तथा नये पनपते हुए वर्गों द्वारा इस प्रभुत्व को हस्तगत करने की समस्या ही रही है। लेकिन इन वर्गों के जन्म लेने और क़ायम रहने के कारण क्या हैं? इनका कारण वे शुद्ध भौतिक, गोचर परिस्थितियाँ हैं, जिनके अन्तर्गत समाज किसी भी युग में अपने जीवनयापन के साधनों का उत्पादन और विनिमय करता है। मध्ययुग के सामन्ती शासन का आधार छोटे-छोटे कृषक समुदायों की स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था थी, जो अपनी ज़रूरत की प्राय: सभी चीजों का स्वयं उत्पादन कर लेते थे। इनमें विनिमय का प्राय: पूर्ण अभाव था, शस्त्रधारी सामन्त बाहर के आक्रमणों से इनकी रक्षा करते थे, उन्हें जातीय या कम से कम राजनीतिक एकता प्रदान करते थे। नगरों के अभ्युदय के साथ अलग-अलग दस्तकारियों और परस्पर व्यापार का विकास हुआ जो पहले आन्तरिक क्षेत्र में सीमित था और आगे चलकर अन्तरराष्ट्रीय हो गया। इस सब के साथ नगर के पूँजीपति वर्ग का विकास हुआ और मध्ययुग में ही उसने सामन्तों से लड़-भिड़कर सामन्ती व्यवस्था के अन्दर एक विशेषाधिकार प्राप्त श्रेणी के रूप में अपने लिए स्थान बना लिया। परन्तु 15वीं शताब्दी के मध्य के बाद से, यूरोप के बाहर की दुनिया का पता लगने पर, इस पूँजीपति वर्ग को अपने व्यापार के लिए कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र मिल गया। इससे उसे अपने उद्योग-धन्धों के लिए नयी स्फूर्ति मिली। प्रमुख शाखाओं में दस्तकारी का स्थान मैनुफ़ेक्चर ने ले लिया जो अब फ़ैक्टरियों के पैमाने पर स्थापित था। फिर इसकी जगह बड़े

पैमाने के उद्योग ने ले ली जो पिछली सदी के आविष्कारों, ख़ासकर भाप से चलनेवाले इंजन के आविष्कार से सम्भव हो गया था। बड़े पैमाने के उद्योग का व्यापार पर यह प्रभाव पड़ा कि पिछड़े हुए देशों में पुराना हाथ का काम ठप हो गया और उन्नत देशों में उसने संचार के आधुनिक साधन – भाप से चलनेवाले जहाज़, रेल, विद्युत तार – उत्पन्न किये। इस प्रकार पूँजीपति वर्ग सामाजिक सम्पत्ति और सामाजिक शक्ति दोनों को अधिकाधिक अपने हाथों में केन्द्रित करने लगा, यद्यपि काफ़ी अरसे तक राजनीतिक सत्ता से वह वंचित रहा जो सामन्तों और उनके द्वारा समर्थित राजतन्त्र के हाथ में थी। लेकिन विकास की एक मंज़िल ऐसी आयी – फ़्रांस में महान क्रान्ति के बाद – जब उसने राजनीतिक सत्ता को भी हथिया लिया, और तब से वह सर्वहारा वर्ग और छोटे किसानों पर शासन करनेवाला वर्ग बन गया। इस दृष्टिकोण से, समाज की विशेष आर्थिक स्थिति का सम्यक् ज्ञान होने से सभी ऐतिहासिक घटनाओं की बड़ी सरलता से व्याख्या की जा सकती है, यद्यपि यह सही है कि हमारे पेशेवर इतिहासकारों में इस ज्ञान का सर्वथा अभाव है। इसी प्रकार, हर ऐतिहासिक युग की धारणाओं और उसके विचारों की व्याख्या बड़ी सरलता से, उस युग की आर्थिक जीवनावस्थाओं और सामाजिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर (ये सम्बन्ध भी आर्थिक परिस्थितियों द्वारा ही निर्धारित होते हैं) की जा सकती है। इतिहास को पहली बार अपना वास्तविक आधार मिला। यह आधार एक बहुत ही स्पष्ट सत्य है जिसकी ओर पहले लोगों का ध्यान बिल्कुल नहीं गया था, यानी यह सत्य कि मनुष्यों को सबसे पहले खाना-पीना, ओढ़ना-पहनना और सिर पर छत चाहिए, इसलिए पहले उन्हें लाज़िमी तौर पर **काम करना** होता है, जिसके बाद ही वे प्रभुत्व के लिए एक दूसरे से झगड़ सकते हैं, और राजनीति, धर्म, दर्शन, आदि को अपना समय दे सकते हैं। आख़िरकार इस स्पष्ट सत्य को अपना ऐतिहासिक अधिकार प्राप्त हुआ।

समाजवादी दृष्टिकोण के लिए इतिहास की यह नयी धारणा सर्वोच्च महत्त्व की थी। इससे पता लगा कि पूर्व के सम्पूर्ण इतिहास की गति वर्ग-विरोधों और वर्ग-संघर्षों के बीच में रही है, कि शासक और शासित, शोषक और शोषित वर्गों का अस्तित्व बराबर रहा है और यह कि मानवजाति के अधिकांश भाग के पल्ले सदा से कड़ी मशक़्क़त पड़ी है, आनन्दोपभोग बहुत कम। ऐसा क्यों हुआ? इसीलिये कि मानवजाति के विकास की सभी पिछली मंजिलों में उत्पादन का विकास इतना कम हुआ था कि ऐतिहासिक विकास इस अन्तरविरोधी रूप में ही हो सकता था, ऐतिहासिक प्रगति कुल

मिलाकर एक विशेषाधिकार प्राप्त अल्पसंख्यक समुदाय के क्रियाकलाप का ही विषय बना दी गयी थी, और बहुसंख्यकों के भाग्य में अपने श्रम द्वारा जीवन-निर्वाह के अपने स्वल्प साधन और इसके अतिरिक्त विशेषाधिकार सम्पन्न समुदाय के लिए अधिकाधिक प्रचुर साधन उत्पादित करना रह गया था। परन्तु इतिहास की यही जाँच-पड़ताल, जो हमें इस प्रकार पहले के वर्ग शासन की स्वाभाविक एवं बुद्धिसम्मत व्याख्या प्रदान करती है (अन्यथा हम मानव-स्वभाव की दुष्टता द्वारा ही उसकी व्याख्या कर सकते थे), साथ ही साथ हमें यह बोध कराती है कि वर्तमान युग में उत्पादक शक्तियों के अति प्रचण्ड विकास के कारण मानवजाति को शासक और शासित, शोषक और शोषित में बाँटकर रखने का अन्तिम बहाना भी, कम से कम सबसे उन्नत देशों में, मिट चुका है; कि शासक बड़े पूँजीपति अपनी ऐतिहासिक भूमिका समाप्त कर चुके हैं, और जैसाकि व्यापारिक संकटों, और ख़ासकर पिछली भयानक गिरावट और सभी देशों में फैली मन्दी से सिद्ध हो चुका है, वे समाज का नेतृत्व करने के योग्य अब नहीं रह गये हैं, बल्कि उत्पादन के विकास में बाधक बन गये हैं; कि ऐतिहासिक नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के हाथ में चला गया है, ऐसे वर्ग के हाथ में चला गया है जो समाज में अपनी समग्र स्थिति के कारण सम्पूर्ण वर्ग शासन, सम्पूर्ण दासता एवं सम्पूर्ण शोषण का अन्त करके ही अपने को मुक्त कर सकता है; और यह कि सामाजिक उत्पादक शक्तियाँ, जो इतनी विकसित हो गयी हैं कि पूँजीपति वर्ग के क़ाबू से बाहर हैं, बस इस प्रतीक्षा में हैं कि एकजुट सर्वहारा उन्हें अपने हाथों में ले ले जिससे कि ऐसी व्यवस्था क़ायम की जा सके जिसमें समाज का प्रत्येक सदस्य न केवल सामाजिक सम्पदा के उत्पादन में, बल्कि वितरण और प्रबन्ध में भी हाथ बँटा सकेगा, और जो व्यवस्था सम्पूर्ण उत्पादन के नियोजित संचालन द्वारा सामाजिक उत्पादक शक्तियों और उनकी उपज को इतना बढ़ा देगी कि प्रत्येक व्यक्ति की सभी उचित आवश्यकताओं की उत्तरोत्तर बढ़ती मात्रा में पूर्ति सुनिश्चित हो जायेगी।

मार्क्स ने जिस दूसरी महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है, वह पूँजी और श्रम के सम्बन्ध का निश्चित स्पष्टीकरण है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने यह दिखाया कि वर्तमान समाज में और उत्पादन की मौजूदा पूँजीवादी प्रणाली के अन्तर्गत किस तरह पूँजीपति मज़दूर का शोषण करता है। जब से राजनीतिक अर्थशास्त्र ने यह प्रस्थापना प्रस्तुत की कि समस्त सम्पदा और समस्त मूल्य का मूल स्रोत श्रम ही है, तभी से यह प्रश्न भी अनिवार्य रूप से सामने आया कि इस बात से हम इस तथ्य का मेल कैसे बैठाएँ कि उजरती मज़दूर अपने श्रम से जिस मूल्य को

उत्पन्न करता है, वह पूरा का पूरा उसे नहीं मिलता, वरन् उसका एक अंश उसे पूँजीपति को दे देना पड़ता है? पूँजीवादी और समाजवादी, दोनों ही तरह के अर्थशास्त्रियों ने इस प्रश्न का ऐसा उत्तर देने का प्रयत्न किया, जो वैज्ञानिक दृष्टि से संगत हो, परन्तु वे विफल रहे। अन्त में मार्क्स ने ही उसका सही उत्तर दिया। वह उत्तर इस प्रकार है : उत्पादन की वर्तमान पूँजीवादी प्रणाली में समाज के दो वर्ग हैं – एक ओर पूँजीपतियों का वर्ग है, जिसके हाथ में उत्पादन और जीवन-निर्वाह के साधन हैं, दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग है, जिसके पास इन साधनों से वंचित रहने के कारण बेचने के लिए केवल एक माल – अपनी श्रम-शक्ति – ही है और इसलिए जो जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त करने के लिए अपनी इस श्रम-शक्ति को बेचने के लिए मजबूर है। परन्तु किसी माल का मूल्य उसके उत्पादन में, और इसीलिए उसके पुनरुत्पादन में भी, लगी सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। अत: एक औसत मनुष्य की एक दिन, एक महीना या एक वर्ष की श्रम-शक्ति का मूल्य इस श्रम-शक्ति को एक दिन, एक महीना या एक वर्ष तक क़ायम रखने के लिए आवश्यक जीवन-निर्वाह के साधनों में लगे श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। मान लीजिए कि किसी मज़दूर को एक दिन के जीवन-निर्वाह के साधनों के उत्पादन के लिए छह घण्टे का श्रम चाहिए, या उसी बात को यूँ कहें कि उनमें लगा श्रम छह घण्टे के श्रम की मात्रा के बराबर है, तो श्रम-शक्ति का एक दिन का मूल्य ऐसी रक़म में व्यक्त होगा जिसमें छह घण्टे का श्रम लगा हो। अब यह भी मान लीजिए कि इस मज़दूर को काम पर लगानेवाला पूँजीपति उसे बदले में यह रक़म देता है, और इसलिए उसकी श्रम-शक्ति का पूरा मूल्य उसे अदा करता है। अब अगर मज़दूर दिन में छह घण्टे पूँजीपति के लिए काम करता है तो वह पूँजीपति की पूरी लागत को चुकता कर देता है – छह घण्टे के श्रम के बदले छह घण्टे का मूल्य देता है। पर ऐसी हालत में पूँजीपति के लिए कुछ नहीं रहता, और इसलिए वह तो इसे बिल्कुल दूसरे ही ढंग से देखता है। वह कहता है : मैंने इस मज़दूर की श्रम-शक्ति छह घण्टे के लिए नहीं, बल्कि पूरे दिन के लिए ख़रीदी है, और इसलिए वह मज़दूर से 8, 10, 12, 14 या इससे भी अधिक घण्टे, जैसी भी परिस्थिति हो, काम लेता है। फलत: सातवें, आठवें और बाद के घण्टों की उपज अशोधित श्रम की – ऐसे श्रम की जिसका भुगतान नहीं किया गया होता – उपज होती है और यह सीधे पूँजीपति की जेब में पहुँच जाती है। इस तरह पूँजीपति की नौकरी करनेवाला मज़दूर केवल उस श्रम-शक्ति का मूल्य ही नहीं पुनरुत्पादित करता जिसके लिए उसे मज़दूरी मिलती है, बल्कि इसके अलावा वह **अतिरिक्त मूल्य** भी पैदा करता है जिसे पहले पूँजीपति

हस्तगत करता है और जो बाद में निश्चित आर्थिक नियमों के अनुसार समूचे पूँजीपति वर्ग के बीच वितरित होता है। यह अतिरिक्त मूल्य वह मूल कोष होता है जिससे लगान, मुनाफ़ा, पूँजी का संचय बनता है – संक्षेप में वह सारी दौलत बनती है जिसका ग़ैर-मेहनतकश वर्ग उपभोग अथवा संचय करते हैं। इससे सिद्ध हो गया कि आज के पूँजीपतियों द्वारा धन-संचय उसी प्रकार दूसरों के अशोधित श्रम का हस्तगतकरण है जिस प्रकार दास-स्वामियों या भूदास श्रम का शोषण करनेवाले सामन्ती प्रभुओं का धन-संचय था, और शोषण के इन सभी रूपों में अन्तर केवल अशोधित श्रम के हस्तगतकरण के तरीके और ढंग का ही है। पर इस बात ने सम्पत्तिधारी वर्गों के ढोंग भरे शब्दजाल का अन्तिम औचित्य भी समाप्त कर दिया, जिसका आशय यह होता था कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में क़ानून और न्याय, अधिकारों और कर्त्तव्यों की समानता तथा हितों के सामंजस्य का बोलबाला है, और यह प्रकट कर दिया कि वर्तमान पूँजीवादी समाज, अपने पूर्ववर्ती समाजों की ही भाँति और उनसे किसी भी तरह कम नहीं, जनता की विशाल बहुसंख्या के निरन्तर घटते ही जाते अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा शोषण की एक भीमकाय संस्था मात्र है।

आधुनिक वैज्ञानिक समाजवाद इन दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर आधारित है। *पूँजी* के दूसरे खण्ड में इनका और इनसे शायद ही कुछ कम महत्त्व रखनेवाली समाज की पूँजीवादी व्यवस्था-सम्बन्धी कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों का विस्तार किया जायेगा। इसके साथ राजनीतिक अर्थशास्त्र के उन पहलुओं में भी, जिन्हें प्रथम खण्ड में नहीं लिया गया था, क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायेगा। मार्क्स उसे शीघ्र ही प्रेस के लिए तैयार कर सकें, यही हमारी हार्दिक कामना है।

फ़्रे. एंगेल्स द्वारा जून, 1877 के मध्य में लिखित।
वॉल्क्स कैलेण्डर नामक वार्षिकी में प्रकाशित, जो ब्रुंसविक में 1878 में निकली थी।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कार्ल मार्क्स की क़ब्र पर भाषण

14 मार्च को तीसरे पहर, पौने तीन बजे, संसार के सबसे महान विचारक की चिन्तन-क्रिया बन्द हो गयी। उन्हें मुश्किल से दो मिनट के लिए अकेला छोड़ा गया होगा, लेकिन जब हम लोग लौटे तो देखा कि वे आरामकुर्सी पर शान्ति से सो गये हैं – परन्तु सदा के लिए।

इस मनुष्य की मृत्यु से यूरोप और अमेरिका के जुझारू सर्वहारा वर्ग और ऐतिहासिक विज्ञान की अपार क्षति हुई है। इस ओजस्वी आत्मा के महाप्रयाण से जो अभाव पैदा हो गया है, लोग शीघ्र ही उसे अनुभव करेंगे।

जैव जगत में जैसे डार्विन ने विकास के नियम का पता लगाया था, वैसे ही मार्क्स ने मानव-इतिहास में विकास के नियम का पता लगाया। उन्होंने इस सीधी-सादी सच्चाई का पता लगाया – जो अब तक विचारधारात्मक आवरण से ढँकी हुई थी – कि राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म आदि की ओर ध्यान दे सकने के पूर्व मनुष्य को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और सिर पर छत चाहिए। इसलिए जीविका के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन और फलतः किसी युग में अथवा किसी जाति द्वारा उपलब्ध आर्थिक विकास की अवस्था ही वह आधार है जिस पर राजकीय संस्थाओं, क़ानूनी धारणाओं, कला और यहाँ तक कि धार्मिक धारणाओं का भी विकास होता है। इसलिए उसके ही प्रकाश में इन सब की व्याख्या की जानी चाहिए, न कि इसके उल्ट, जैसाकि अब तक होता रहा है।

परन्तु इतना ही नहीं, मार्क्स ने गति के उस विशेष नियम का भी पता लगाया जिससे उत्पादन की वर्तमान पूँजीवादी प्रणाली और इस प्रणाली से उत्पन्न पूँजीवादी समाज, दोनों ही नियन्त्रित हैं। अतिरिक्त मूल्य के आविष्कार से एकबारगी उस समस्या पर प्रकाश पड़ा जिसे हल करने की कोशिश में पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों और समाजवादी आलोचकों दोनों द्वारा किया गया अब तक का सारा अन्वेषण अन्ध-अन्वेषण ही था।

ऐसे दो आविष्कार एक जीवन के लिए काफ़ी हैं। वह मनुष्य भी

भाग्यशाली कहा जाता, जिसे इस तरह का एक भी आविष्कार करने का सौभाग्य प्राप्त होता। परन्तु जिस भी क्षेत्र में मार्क्स ने खोज की – और उन्होंने बहुत-से क्षेत्रों में, यहाँ तक कि गणित के क्षेत्र में भी, खोज की – एक में भी सतही छानबीन तक सीमित न रहकर स्वतन्त्र खोजें कीं।

ऐसे वैज्ञानिक थे वे। परन्तु वैज्ञानिक का उनका रूप उनके समग्र व्यक्तित्व का आधा अंश भी न था। मार्क्स के लिए विज्ञान ऐतिहासिक रूप से गति प्रदान करनेवाली एक क्रान्तिकारी शक्ति था। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में किसी भी नयी खोज से, जिसके व्यावहारिक प्रयोग का अभी अनुमान लगाना सर्वथा असम्भव हो, उन्हें कितनी भी प्रसन्नता क्यों न होती उसकी तुलना में उस खोज से उन्हें बिल्कुल दूसरे ही ढंग की प्रसन्नता का अनुभव होता जिससे उद्योग-धन्धों और सामान्यत: ऐतिहासिक विकास में कोई तात्कालिक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते दिखायी देते। उदाहरण के लिए बिजली के क्षेत्र में हुए आविष्कारों के विकासक्रम का और मरसै देप्रे* के हाल के आविष्कारों का मार्क्स बड़े ग़ौर से अध्ययन करते थे।

मार्क्स सर्वोपरि क्रान्तिकारी थे। जीवन में उनका असली उद्देश्य किसी न किसी तरह पूँजीवादी समाज और उससे पैदा होनेवाली राजकीय संस्थाओं के ध्वंज में योगदान करना था, आधुनिक सर्वहारा वर्ग को आज़ाद करने में योग देना था, जिसे सबसे पहले उन्होंने ही अपनी स्थिति और आवश्यकताओं के प्रति सचेत किया और बताया कि किन परिस्थितियों में उसका उद्धार हो सकता है। संघर्ष करना उनका सहज गुण था। उन्होंने जिस जोश, जिस लगन और जिस सफलता के साथ संघर्ष किया, उसकी बहुत कम मिसालें हो सकती हैं। प्रथम *राइनिश ज़ाइटुंग* (1842), पेरिस के *वोर्वाट्स!* (1844), *डाइचे-ब्रसेलेर-ज़ाइटुंग* (1847), *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग (1848-1849), न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून (1852-1861)* में उनका काम**, इनके अलावा अनेक जुझारू पुस्तिकाओं की रचना, पेरिस, ब्रसेल्स और लन्दन के संगठनों में काम और अन्तत: उनकी चरम उपलब्धि – महान अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ की स्थापना*** – जो इतनी बड़ी उपलब्धि थी कि इस संगठन का

---

* **देप्रे, मरसै** (1843-1918) – फ़्रांसीसी भौतिक विज्ञानी, दूरी पर विद्युतसंचार प्रणाली के जनक। – *स.*

** मार्क्स *राइनिश ज़ाइटुंग* तथा *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* के सम्पादक थे तथा अन्य समाचारपत्रों के सम्पादक मण्डल के सहकर्मी थे। – *स.*

*** अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ (पहला इण्टरनेशनल) 1864 में मार्क्स द्वारा स्थापित किया गया तथा 1872 तक क़ायम रहा। वह सर्वहारा पार्टी का बीज रूप था। – *स.*

संस्थापक, चाहे उसने और कुछ भी न किया होता, उस पर उचित ही गर्व कर सकता था।

इस सब के फलस्वरूप मार्क्स अपने युग के सबसे अधिक घृणित तथा लांछित व्यक्ति थे। निरंकुशतावादी और जनतन्त्रवादी, दोनों ही तरह की सरकारों ने उन्हें अपने राज्यों से निकाला। पूँजीपति, चाहे वे रूढ़िवादी हों चाहे घोर जनवादी, मार्क्स को बदनाम करने में एक-दूसरे से होड़ करते थे। मार्क्स इस सब को यूँ झटकारकर अलग कर देते थे जैसे वह मकड़ी का जाला हो, उसकी ज़रा भी परवाह न करते थे, बहुत ज़रूरी होने पर ही उत्तर देते थे। और अब वह इस संसार में नहीं हैं। साइबेरिया की खानों से लेकर कैलिफ़ोर्निया तक, यूरोप और अमेरिका के सभी भागों में उनके लाखों क्रान्तिकारी साथी जो उन्हें प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, आज उनके निधन पर आँसू बहा रहे हैं। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि चाहे उनके अनेक विरोधी रहे हों, परन्तु उनका व्यक्तिगत शत्रु शायद ही कोई रहा हो।

उनका नाम और वैसे ही उनका काम भी युग-युगों तक अमर रहेगा!

17 मार्च, 1883

व्ला. इ. लेनिन

कार्ल मार्क्स*

कार्ल मार्क्स का जन्म 5 मई, 1818 को त्रियेर नगर (प्रशा के राइन प्रान्त) में हुआ था। उनके पिता एक वकील, यहूदी थे, जिन्होंने 1824 में प्रोटेस्टेण्ट धर्म स्वीकार किया था। यह परिवार समृद्ध और सुसंस्कृत था, परन्तु क्रान्तिकारी नहीं था। त्रियेर में हाई स्कूल में शिक्षा पाने के बाद, मार्क्स पहले बोन, फिर बर्लिन विश्वविद्यालय में दाख़िल हुए। वहाँ उन्होंने क़ानून पढ़ा और मुख्यतः इतिहास और दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। 1841 में एपीक्यूरस** के दर्शनशास्त्र पर अपनी थीसिस प्रस्तुत करके उन्होंने विश्वविद्यालय की शिक्षा पूर्ण की। इस समय तक मार्क्स हेगेलवादी-भाववादी थे। बर्लिन में वह ब्रूनो बावेर आदि "वामपन्थी हेगेलवादियों" में से थे, जो हेगेल*** के दर्शन से अनीश्वरवादी और क्रान्तिकारी निष्कर्ष निकालना चाहते थे।

विश्वविद्यालय से डिग्री लेने के बाद मार्क्स प्रोफ़ेसर बनने की आशा से बोन चले गये। परन्तु सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति ने – जिसके फलस्वरूप 1832 में लुडविग फ़ायरबाख़ को प्रोफ़ेसरी से अलग किया गया था – 1836 में उनके विश्वविद्यालय में वापस आने पर रोक लगायी गयी थी, और 1841 में नवयुवक प्रोफ़ेसर ब्रूनो बावेर को बोन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करने से रोका गया था, मार्क्स को शैक्षिक वृत्ति का विचार तजने के लिए बाध्य किया। उस समय जर्मनी में वामपन्थी हेगेलवाद के विचार ज़ोर पकड़ रहे थे। लुडविग फ़ायरबाख़ विशेष रूप से 1836 के बाद धर्मदर्शन की आलोचना करने लगे थे और भौतिकवाद की ओर रुख़ कर रहे थे। 1841 तक

---

* यहाँ व्ला. इ. लेनिन द्वारा लिखित मार्क्स की संक्षिप्त जीवनी सम्बन्धी लेख का एक अंश दिया गया है। – *स.*

** **एपीक्यूरस** (लगभग 341–270 ई. पू.) – प्रख्यात प्राचीन यूनानी भौतिकवादी दार्शनिक, नास्तिक। – *स.*

*** **हेगेल, गेओर्ग विल्हेल्म** (1770–1881 ई.) – विख्यात जर्मन दार्शनिक, वस्तुगत भाववादी, भाववादी द्वन्द्ववाद के प्रणेता। – *स.*

उनके दार्शनिक विचारों में भौतिकवाद की प्रधानता हो गयी थी (*ईसाई धर्म का सार*)। 1843 में उनकी पुस्तक *भावी दर्शन के मूल सिद्धान्त* प्रकाशित हुई। फ़ायरबाख़ की इन कृतियों के बारे में एंगेल्स ने बाद में लिखा था – इन पुस्तकों ने जिस "स्वाधीन चेतना को जन्म दिया था, वह तो अनुभव करने की वस्तु थी"। "हम" (अर्थात् मार्क्स समेत वामपन्थी हेगेलवादी) "तुरन्त फ़ायरबाख़ के अनुयायी हो गये"। उस समय राइन प्रान्त के कुछ उग्रवादी पूँजीपतियों ने, जिनका वामपन्थी हेगेलवादियों से सम्पर्क था, कोलोन में एक विरोधी पत्र राइनिश ज़ाइटुंग निकाला (पहला अंक 1 जनवरी, 1842 को निकला था)। मार्क्स और ब्रूनो बावेर से इसके प्रमुख प्रधान सम्पादक बनने का अनुरोध किया गया। अक्टूबर, 1842 में मार्क्स उसके प्रधान सम्पादक हो गये और बोन से कोलोन चले आये। मार्क्स के सम्पादनकाल में पत्र का रुझान अधिकाधिक क्रान्तिकारी-जनवादी होता गया, इसलिए सरकार ने पहले तो पत्र पर दोहरी और तिहरी सेंसरशिप बिठायी, फिर 1 जनवरी, 1843 से उसे एकदम बन्द ही कर देने का निश्चय कर लिया। मार्क्स को उस तिथि तक अपना त्यागपत्र देना पड़ा। परन्तु उनके अलग होने के बाद भी पत्र बच नहीं सका। मार्च, 1843 में वह ठप हो गया। *राइनिश ज़ाइटुंग* में प्रकाशित मार्क्स के अधिक महत्त्वपूर्ण लेखों में से एंगेल्स ने – उन लेखों के अतिरिक्त जिनका उल्लेख नीचे किया गया है (देखिये सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची*) – एक और लेख की चर्चा की है जो मार्क्स ने मोज़ेल घाटी के शराब बनानेवाले किसानों की स्थिति के बारे में लिखा था। मार्क्स ने पत्रकारिता के अपने अनुभव से जान लिया था कि अभी वे राजनीतिक अर्थशास्त्र से भली-भाँति परिचित नहीं हैं, इसलिए वे उसका अध्ययन करने में जुट गये।

सन् 1843 में मार्क्स ने क्रेयत्स्नाख़ में जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन से विवाह किया। जेनी उनकी बचपन की मित्र थीं और मार्क्स जब विद्यार्थी थे, तभी जेनी के साथ उनकी सगाई हो गयी थी। जेनी का जन्म प्रशा के एक प्रतिक्रियावादी अभिजात परिवार में हुआ था। 1850-1858 के अत्यन्त प्रतिक्रियावादी काल में उनका बड़ा भाई प्रशा का गृहमन्त्री रहा था। 1843 के शरद में मार्क्स एक रैडिकल पत्रिका निकालने के उद्देश्य से पेरिस गये। उनके साथ आर्नोल्ड रूगे भी थे (जीवनकाल 1802-1880; वामपन्थी हेगेलवादी, 1825 से 1830 तक जेल में; 1848 के बाद राजनीतिक उत्प्रवासी;

---

* इस लेख के अन्त में जिसे व्ला. इ. लेनिन ने ग्रानात विश्वकोष के लिए 1914 में लिखा था, मार्क्सवाद की तथा मार्क्सवाद सम्बन्धी साहित्य की समीक्षा दी गयी थी, जिसे प्रस्तुत पुस्तक में नहीं दिया गया है। – *स.*

1866–1870 के बाद बिस्मार्क के अनुयायी)। इस पत्रिका का, जिसका नाम *डाइचे फ़्रांज़ोसिस्शे यारबुख़ेर* था, केवल एक ही अंक प्रकाशित हुआ। जर्मनी में गुप्त वितरण की कठिनाइयों और रूगे से मतभेद होने के कारण उसे बन्द कर देना पड़ा। इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में ही मार्क्स के क्रान्तिकारी रूप की झलक मिलती है। वे "समस्त वर्तमान वास्तविकता की निर्मम आलोचना", विशेषकर "शस्त्रों की आलोचना", की घोषणा और जनता और सर्वहारा वर्ग से अपील करते हैं।

सितम्बर, 1844 में फ़्रेडरिक एंगेल्स कुछ दिनों के लिए पेरिस आये और तभी से मार्क्स के घनिष्ठतम मित्र हो गये। पेरिस के क्रान्तिकारी दलों के उबलते जीवन में दोनों ने सक्रिय भाग लिया (उस समय प्रूदों के मत का विशेष महत्त्व था, जिसकी मार्क्स ने 1847 में प्रकाशित *दर्शन की दरिद्रता* नाम की अपनी पुस्तक में बखिया उधेड़ दी)। निम्न बुर्जुआ समाजवाद के विभिन्न सिद्धान्तों से डटकर संघर्ष करते हुए उन्होंने क्रान्तिकारी **सर्वहारा समाजवाद** या कम्युनिज़्म (मार्क्सवाद) के सिद्धान्त और कार्यनीति की रूपरेखा निश्चित की। 1845 में प्रशा की सरकार के प्रबल आग्रह पर मार्क्स को एक ख़तरनाक क्रान्तिकारी क़रार देकर पेरिस से निर्वासित कर दिया गया। पेरिस से वे ब्रसेल्स आ गये। 1847 के वसन्त में मार्क्स और एंगेल्स एक गुप्त प्रचार-सभा **कम्युनिस्ट लीग** के सदस्य हो गये। उसकी दूसरी कांग्रेस (लन्दन, नवम्बर 1847) में उन्होंने प्रमुख भाग लिया और उसके निर्देश पर अपना प्रसिद्ध *कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र* तैयार किया, जो फ़रवरी 1848 में प्रकाशित हुआ। इस रचना में प्रतिभापूर्ण स्पष्टता और भव्यता के साथ एक नया विश्वदृष्टिकोण – सुसंगत भौतिकवाद जिसका प्रसार सामाजिक जीवन तक हुआ है, विकास की सर्वांगीण तथा गहनतम सिद्धान्त के रूप में द्वन्द्ववाद, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त और एक नये, कम्युनिस्ट समाज के सृजनकर्त्ता, सर्वहारा वर्ग की विश्व-ऐतिहासिक क्रान्तिकारी भूमिका – प्रस्तुत किया गया है।

फ़रवरी 1848 की क्रान्ति भड़क उठने पर मार्क्स बेल्जियम से निर्वासित कर दिये गये। वे पेरिस लौट आये और मार्च की क्रान्ति के बाद वहाँ से कोलोन, जर्मनी, चले गये। 1 जून 1848 से 19 मई 1849 तक कोलोन से *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* निकलता रहा जिसके प्रधान सम्पादक मार्क्स थे। 1848-1849 के क्रान्तिकारी घटनाक्रम से नये सिद्धान्त की ज़ोरदार पुष्टि हुई – जैसेकि बाद में भी संसार के सभी देशों के सर्वहारा और जनवादी आन्दोलनों से उसकी पुष्टि हुई है। विजयी प्रतिक्रान्तिकारियों के उकसावे पर मार्क्स पर पहले तो मुक़दमा चलाया गया (9 फ़रवरी, 1849 को वे बरी कर दिये गये) और

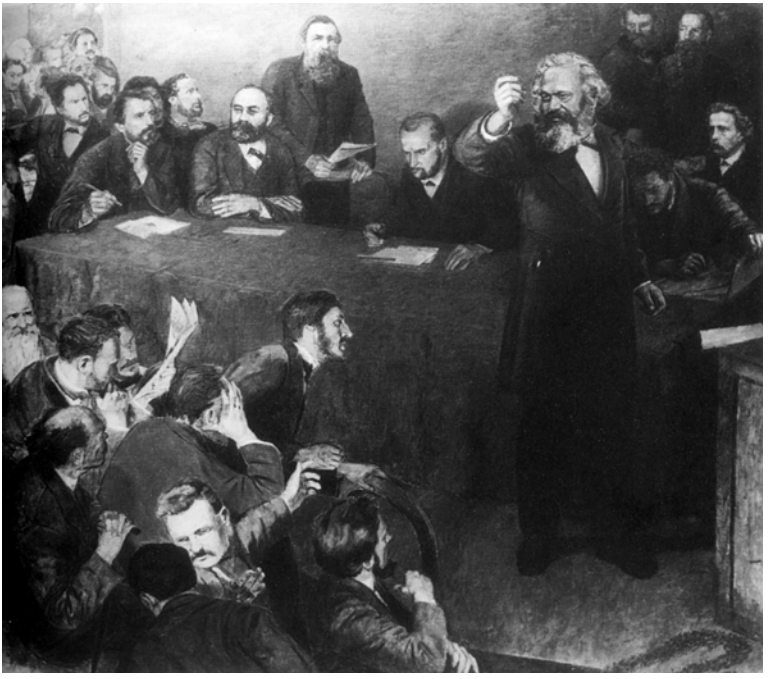

हेग कांग्रेस में भाषण देते हुए मार्क्स

फिर 16 मई 1849 को उन्हें जर्मनी से निकाल दिया गया। वे पहले पेरिस गये, जहाँ से 13 जून 1849 के जुलूस के बाद उन्हें फिर निर्वासित कर दिया गया। इसके बाद वे लन्दन चले गये और फिर देहान्त तक वहीं रहे।

जैसाकि मार्क्स और एंगेल्स के पत्र-व्यवहार (1913 में प्रकाशित) से साफ़ पता चलता है, यह निर्वासित जीवन अत्यन्त कठोर था। मार्क्स और उनके परिवार को दुस्सह निर्धनता का सामना करना पड़ा। यदि एंगेल्स ने सदा निस्स्वार्थ भाव से मार्क्स की आर्थिक सहायता न की होती, तो न केवल मार्क्स *पूँजी* को ही पूरा न कर पाते, वरन् अभावग्रस्त होकर निश्चय ही मर गये होते। इसके अलावा निम्न बुर्जुआ समाजवाद और सामान्यत: ग़ैर-सर्वहारा समाजवाद के प्रचलित सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों ने मार्क्स को निरन्तर ही निर्ममता से लड़ते रहने के लिए बाध्य किया। कभी-कभी उन्हें कटु और द्वेषपूर्ण व्यक्तिगत आक्षेपों का उत्तर देना पड़ता था (*श्रीमान् फ़ोग्ट**)। प्रवासियों के राजनीतिक हल्क़ों से दूर रहकर मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन को अपना अधिकांश समय देते हुए, कई ऐतिहासिक कृतियों में अपने भौतिकवादी सिद्धान्त को विकसित किया। *राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास* (1859) और *पूँजी* (खण्ड 1, 1867) में मार्क्स ने इस विज्ञान को क्रान्तिकारी रूप प्रदान किया। (देखिये *मार्क्स की शिक्षा*)

छठे दशक के अन्तिम वर्षों तथा सातवें दशक में जनवादी आन्दोलनों की लहर फिर उठने लगी, इससे मार्क्स फिर राजनीतिक कार्यक्षेत्र में उतर पड़े। 28 सितम्बर 1864 को लन्दन में **इण्टरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसिएशन** - प्रसिद्ध **पहले इण्टरनेशनल** - की नींव डाली गयी। मार्क्स इस संगठन के प्राण थे। वे ही उसकी पहली *अपील* और ढेरों प्रस्तावों, वक्तव्यों तथा घोषणापत्रों के लेखक थे। विभिन्न देशों के मज़दूर आन्दोलनों को एकताबद्ध करते हुए, ग़ैर-सर्वहारा, मार्क्सवाद से पहले के समाजवाद के विभिन्न रूपों (माज़्ज़िनी, प्रूदों, बाकूनिन, इंग्लैण्ड में उदारवादी ट्रेड-यूनियन आन्दोलन, जर्मनी में लासाल के दक्षिणपन्थी ढुलमुलपन) को एक संयुक्त मोर्चे में लाने की कोशिश करते हुए, इन सभी मतों और शाखाओं के सिद्धान्तों से संघर्ष करते हुए मार्क्स ने विभिन्न देशों में मज़दूर वर्ग के सर्वहारा संघर्ष की एक ही कार्यनीति निश्चित की। पेरिस कम्यून के पतन (1871) के बाद - जिसका मार्क्स ने मर्मभेदी दृष्टि से, बड़ी स्पष्टता, अद्‌भुत सूझबूझ के साथ और अत्यन्त **प्रभावशाली** तथा क्रान्तिकारी ढंग से विश्लेषण (*फ़्रांस में गृहयुद्ध*,

---

* **श्रीमान् फ़ोग्ट** - कार्ल मार्क्स की रचना, जो जर्मन पूँजीवादी-जनवादी कार्ल फ़ोग्ट के विरुद्ध लिखी गयी थी।

1871) किया था – और बाकूनिनवादियों द्वारा इण्टरनेशनल में फूट डाल दिये जाने के बाद इस संगठन का यूरोप में अस्तित्व असम्भव हो गया। इण्टरनेशनल की हेग कांग्रेस (1872) के बाद मार्क्स के आग्रह पर उसकी जनरल कौंसिल को न्यूयार्क ले जाया गया। पहले इण्टरनेशनल ने अपना ऐतिहासिक कार्य पूरा कर दिया। उसके बाद एक ऐसा युग आया जिसमें संसार के सभी देशों में मज़दूर आन्दोलन का पहले से कहीं ज़्यादा विकास हुआ, जिसमें आन्दोलन का **प्रसार** हुआ, उसकी परिधि विस्तृत हुई और अलग-अलग जातीय राज्यों में **आम** समाजवादी मज़दूर पार्टियाँ बनीं।

इण्टरनेशनल, और उससे भी ज़्यादा अपने कठिन सैद्धान्तिक कार्यों में परिश्रम करने के कारण मार्क्स का स्वास्थ्य बिल्कुल गिर गया था। वे राजनीतिक अर्थशास्त्र को नया रूप देने और *पूँजी* को समाप्त करने के अपने काम में लगे रहे; इसके लिए उन्होंने बहुत-सी नयी सामग्री एकत्रित की और कई भाषाएँ (उदाहरण के लिए रूसी) सीखीं, परन्तु अस्वस्थ रहने के कारण वे *पूँजी* को पूरा न कर सके।

2 दिसम्बर 1881 को उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। 14 मार्च 1883 को आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे मार्क्स ने भी सदा के लिए आँखें मूँद लीं। वे लन्दन के हाईगेट क़ब्रिस्तान में अपनी पत्नी की क़ब्र की बग़ल में दफ़नाये गये। मार्क्स के बच्चों में से कुछ उनकी भयानक ग़रीबी की हालत में बचपन में ही लन्दन में मर गये। उनकी तीन बेटियों ने अंग्रेज़ और फ़्रांसीसी समाजवादियों से शादी की। इन बेटियों के नाम हैं : एल्योनोरा एवेलिंग, लॉरा लफ़ार्ग, जेनी लांगे। जेनी लांगे का बेटा फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी का सदस्य है।

पॉल लफ़ार्ग*

मार्क्स मेरे मानसपट पर

इन्सान थे, हर चीज़ में इन्सान;
होगा न कोई दूसरा
उनके कभी समान!

(शेक्सपियर, 'हैमलेट')

1

मैं कार्ल मार्क्स से पहले पहल फ़रवरी 1865 में मिला। पहले इण्टरनेशनल की स्थापना 28 सितम्बर, 1864 को लन्दन के सेण्ट मार्टिन्स हॉल में हुई एक सभा में हो चुकी थी और मैं मार्क्स को पेरिस से नवजात संगठन के विकास की ख़बरें देने लन्दन गया। श्री तोलैं ने, जो अब पूँजीवादी जनतन्त्र में सीनेटर हैं, मेरे लिए एक परिचय-पत्र दिया।

मैं तब 24 साल का था। उस पहली भेंट की मुझपर जो छाप पड़ी, उसे मैं आजीवन नहीं भूल सकूँगा। मार्क्स *पूँजी* के पहले खण्ड पर काम कर रहे थे, जो कहीं दो वर्ष बाद, 1867 में प्रकाशित हुआ। वे उस समय कुछ अस्वस्थ थे और उन्हें भय था कि वे अपना काम पूरा नहीं कर सकेंगे, इसलिए नौजवानों के मुलाक़ात के लिए आने से प्रसन्न होते थे। "अपने बाद कम्युनिस्ट प्रचार को जारी रखने के लिए मुझे नौजवानों को अवश्य प्रशिक्षित करना चाहिए", वे कहा करते थे।

कार्ल मार्क्स उन बिरले लोगों में से थे, जो विज्ञान और सार्वजनिक जीवन, दोनों में एकसाथ नेतृत्व कर सकते हैं। ये दोनों पहलू उनमें इतने घुले-मिले हुए थे कि विद्वान मार्क्स और समाजवादी योद्धा मार्क्स, दोनों को

---

* **लफ़ार्ग, पॉल** (1842-1911) - फ़्रांसीसी तथा अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के प्रख्यात नेता, मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र और शिष्य, मार्क्स की बेटी लॉरा के पति। लफ़ार्ग के संस्मरण 1890 में प्रकाशित किये गये। - *स.*

ध्यान में रखकर ही उन्हें समझा जा सकता है।

मार्क्स का विचार था कि अनुसन्धान के अन्तिम फल की चिन्ता किये बिना विज्ञान का अनुशीलन विज्ञान के लिए ही किया जाना चाहिए, लेकिन इसके साथ ही सार्वजनिक जीवन में सक्रिय सहभागिता का त्याग करके, अथवा बिल के चूहे की तरह अपने को अध्ययन-कक्ष या प्रयोगशाला में बन्द करके और समकालीनों के सार्वजनिक जीवन तथा राजनीतिक संघर्ष से तटस्थ रखकर वैज्ञानिक महज़ अपने को हेय ही बना सकता है।

वे कहा करते थे, "विज्ञान को आत्मानन्द नहीं होना चाहिए। जिन्हें स्वयं को वैज्ञानिक अनुष्ठान में लगाने का सौभाग्य प्राप्त है, उन्हें सबसे पहले अपने ज्ञान को मानवजाति की सेवा में अर्पित करना चाहिए।" "मानवजाति के लिए काम करो", यह उनका एक प्रिय कथन था।

यद्यपि मेहनतकश वर्गों के कष्टों के प्रति मार्क्स गहरी सहानुभूति रखते थे, फिर भी भावुकता के कारण नहीं, बल्कि इतिहास तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन से वे कम्युनिस्ट विचारों पर पहुँचे। उनका दावा था कि निजी हितों के प्रभाव और वर्गीय पूर्वाग्रहों की अन्धता से मुक्त कोई भी पक्षपातहीन व्यक्ति लाज़िमी तौर से इन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचेगा।

लेकिन किसी पूर्वाग्रह के बिना मानव-समाज के आर्थिक तथा राजनीतिक विकास का अध्ययन करते हुए भी, मार्क्स ने मात्र अपने अनुसन्धान के नतीजों का प्रचार करने के इरादे और उस समाजवादी आन्दोलन के लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करने की अटल इच्छा से प्रेरित होकर ही लेखन-कार्य किया जो उस समय तक कल्पनालोक के बादलों में खोया हुआ था। उन्होंने मज़दूर वर्ग को विजयी बनाने के लिए ही, जिसका ऐतिहासिक ध्येय समाज का आर्थिक तथा राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त करते ही कम्युनिज़्म की स्थापना करना है, अपने विचारों का प्रचार किया।

मार्क्स ने अपनी सरगर्मी को अपनी जन्मभूमि तक ही सीमित नहीं रखा। वे कहा करते थे, "मैं विश्व नागरिक हूँ, मैं जहाँ कहीं भी हूँ, सक्रिय हूँ।" वस्तुतः फ़्रांस, बेल्जियम, ब्रिटेन, चाहे जिस देश में भी घटनाओं तथा राजनीतिक अत्याचारों से बाध्य होकर वे गये, उन्होंने वहाँ उठनेवाले क्रान्तिकारी आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया।

लेकिन मेटलैण्ड पार्क रोड के उनके अध्ययनकक्ष में मैंने पहले पहल एक अथक, अतुल्य समाजवादी प्रचारक को नहीं, बल्कि वैज्ञानिक को देखा। यह अध्ययनकक्ष ही वह केन्द्र था, जहाँ सभ्य संसार के सभी हिस्सों से समाजवादी चिन्तन के आचार्य की राय जानने के लिए पार्टी के साथी आया

करते थे। उस ऐतिहासिक कक्ष को जानने के बाद ही मार्क्स के भावनात्मक जीवन के अन्तरंग में प्रवेश किया जा सकता है।

वह दूसरी मंज़िल पर था और पार्क की ओर खुलनेवाली एक चौड़ी खिड़की से आनेवाले प्रकाश से आप्लावित था। खिड़की की उल्टी दिशा में तथा अँगीठी के दोनों तरफ़ दीवार से लगी किताबों से भरी आल्मारियों की क़तार थी, जो अख़बारों और पाण्डुलिपियों से छत तक अटी थीं। अँगीठी की उल्टी दिशा में तथा खिड़की के एक तरफ कागज़ों, किताबों और अख़बारों से लदी दो मेज़ें थीं। कमरे के बीचोबीच ख़ासी रोशनी में एक छोटी (3 फ़ुट लम्बी और 2 फ़ुट चौड़ी) सादी मेज़ और लकड़ी की हत्थेदार कुर्सी थी। कुर्सी और आल्मारी के बीच खिड़की की उल्टी दिशा में चमड़े से मढ़ा सोफ़ा था, जिस पर मार्क्स जब तब लेटकर आराम करते थे। अँगीठी से दासे पर और किताबें, सिगार, दियासलाई की डिबियाँ, तम्बाकू के डिब्बे, पेपरवेट और मार्क्स की पत्नी तथा पुत्रियों के, विल्हेल्म वोल्फ़* और फ़्रेडरिक एंगेल्स के फ़ोटो रखे थे।

मार्क्स धूम्रपान बहुत करते थे। उन्होंने मुझसे एक बार कहा, "*पूँजी* से उतने भी पैसे नहीं मिलेंगे, जितने के सिगार मैंने उसको लिखने में फूँक डाले हैं।" लेकिन दियासलाइयों का उनका ख़र्च तो और भी अधिक था। पाइप या सिगार की अक्सर सुध न रहने और थोड़े ही समय में उन्हें बार-बार सुलगाने से दियासलाई की न जाने कितनी डिबियाँ ख़ाली हो जाती थीं।

वे अपनी किताबों या काग़ज़ों को तरतीब से - या कहें कि बेतरतीब - रखने की इजाज़त किसी को नहीं देते थे। सिर्फ़ देखने में ही ऐसा लगता था कि वे बेतरतीब हैं। दरअसल सब कुछ अभिप्रेत स्थान पर होता था, जिससे उन्हें आवश्यक किताब या नोटबुक पा लेना आसान था। बातचीत के दौरान भी वे अक्सर उल्लिखित पुस्तक में से कोई उद्धरण या आँकड़ा दिखाने के लिए रुक जाते थे। अपने अध्ययनकक्ष के साथ उनका तादात्म्य हो गया था : वहाँ की पुस्तकों और काग़ज़ों पर उन्हें उतना ही क़ाबू था, जितना अपने अंगों पर।

मार्क्स के लिए उनकी किताबों की रस्मी तरतीब का कोई उपयोग नहीं था : विभिन्न आकार की ज़िल्दें और पैम्फ़्लेट एक-दूसरे से सटे हुए रखे थे। वे उन्हें आकार की दृष्टि से नहीं, बल्कि विषय की दृष्टि से तरतीब देते थे।

---

* **वोल्फ़, विल्हेल्म** (1809-1864) - जर्मन सर्वहारा क्रान्तिकारी, मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र और सहकर्मी। मार्क्स ने अपनी महान कृति *पूँजी* उन्हीं को समर्पित की है। - *स.*

किताबें उनके दिमाग़ के लिए विलास-सामग्री नहीं, औज़ार थीं। वे कहा करते थे, "ये मेरी बाँदियाँ हैं और इन्हें मेरी इच्छा के अनुसार मेरी सेवा करनी होगी।" वे आकार या ज़िल्दबन्दी पर, काग़ज़ या टाइप की क़िस्म पर कोई ध्यान नहीं देते थे। वे पन्नों के कोने मोड़ देते, हाशिये में पेंसिल के निशान बना देते और पूरी की पूरी पंक्तियाँ रेखांकित कर देते। वे किताबों पर कभी कुछ नहीं लिखते थे, लेकिन कभी-कभी लेखक के अति कर देने पर विस्मयबोधक अथवा प्रश्नवाचक चिह्न लगाए बिना नहीं रह पाते थे। उनकी रेखांकन-पद्धति से, आवश्यकता होने पर किसी पुस्तक से कोई अंश ढूँढ़ लेना आसान हो जाता था। उन्हें अपनी नोटबुकों और किताबों के रेखांकित अंशों को कई-कई बरस बाद फिर-फिर पढ़ने की आदत थी, ताकि वे उनकी याद में ताज़ा बने रहें। उनकी स्मरणशक्ति असाधारण थी, जिसे उन्होंने अपनी जवानी के दिनों से हेगेल के परामर्श पर अनजानी विदेशी भाषा की कविताएँ कण्ठस्थ करके संवर्द्धित किया था।

उन्हें हाइने और गेटे कण्ठस्थ थे और अपनी बातचीत में उन्हें अक्सर उद्धृत करते थे। वे सभी यूरोपीय भाषाओं में कवियों के निष्ठावान पाठक थे। वे हर साल एस्कीलस* को मूल यूनानी में पढ़ते थे। वे उन्हें और शेक्सपियर को नाटक के क्षेत्र में मानवजाति की महानतम प्रतिभाएँ मानते थे। शेक्सपियर के प्रति उनका सम्मान असीम था : उन्होंने उनकी कृतियों का ब्योरेवार अध्ययन किया था और उनके मामूली से मामूली पात्रों तक को जानते थे। महान अंग्रेज़ी नाटककार के प्रति मार्क्स का पूरा परिवार सच्ची श्रद्धा रखता था। उनकी तीनों बेटियों को शेक्सपियर की अनेक कृतियाँ कण्ठस्थ थीं। 1848 के बाद जब मार्क्स ने अंग्रेज़ी भाषा में पारंगत होना चाहा, जिसे अब वह पढ़ सकते थे, तो उन्होंने शेक्सपियर की सारी मौलिक अभिव्यक्तियों को ढूँढ़ निकाला और उनका वर्गीकरण किया। विलियम कॉब्बेट** की वादानुवादी कृतियों के एक अंश के साथ भी उन्होंने यही किया। कॉब्बेट के बारे में उनकी राय ऊँची थी। दान्ते और रॉबर्ट बर्न्स उनके प्रियतम कवियों में से थे और स्कॉटी कवि के पंवाड़ों या विद्रूप-काव्य का अपनी पुत्रियों द्वारा पाठ अथवा गायन अत्यन्त आनन्दपूर्वक सुनते थे।

विज्ञान-क्षेत्र के अथक कार्यकर्त्ता और परम आचार्य कुविए के निजी

---

* **एस्कीलस** (525-456 ई.पू.) - प्रख्यात प्राचीन यूनानी नाटककार, क्लासिकी दुखान्त नाटकों के रचयिता। - *स.*

** **कॉब्बेट, विलियम** (1762-1835) - अंग्रेज़ी राजपुरुष तथा सार्वजनिक लेखक, ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था के जनवादीकरण के योद्धा। - *स.*

उपयोग के लिए पेरिस म्यूज़ियम में, जिसके वे संचालक थे, कई कमरे थे। हर कमरा किसी विशेष अनुष्ठान के लिए अभिप्रेत था और उसमें उसी प्रयोजन की किताबें, आले, विश्लेषणकारी उपकरण इत्यादि रखे थे। जब वे एक प्रकार के काम से थकान महसूस करते, तो दूसरे कमरे में जाकर दूसरे काम में लग जाते। बौद्धिक व्यस्तता की यह अदला-बदली ही उनके लिए आराम होती थी।

मार्क्स उतने ही अथक परिश्रमी थे, जितने कुविए। लेकिन उनके पास कई अध्ययनकक्षों को आवश्यक सामग्री से सज्जित करने के लिए साधन नहीं थे। वे कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलक़दमी करके आराम करते, जिससे क़ालीन पर दरवाज़े से खिड़की तक एक पट्टी-सी बन गयी थी और वह घास के मैदान में बनी पगडण्डी की तरह स्पष्टत: आकृत थी।

बीच-बीच में वे सोफ़े पर लेट जाते और कोई उपन्यास पढ़ने लगते; कभी-कभी वे एकसाथ ही दो या तीन उपन्यास बारी बारी से पढ़ते थे। डार्विन की भाँति वे भी उपन्यास पढ़ने के बड़े शौक़ीन थे और 18वीं सदी के उपन्यासों को, ख़ासतौर से फ़ील्डिंग के *टॉम जोन्स* को, तरज़ीह देते थे। अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक उपन्यासकारों में, जिन्हें वे सर्वाधिक रुचिकर पाते थे, पोल द'कॉक, चार्ल्स लेवर, सीनियर अलेक्ज़ैण्डर ड्यूमा और वाल्टर स्कॉट थे। स्कॉट के *ओल्ड मोर्टेलिटी* को वे मूर्द्धन्य कृति मानते थे। साहसिक कारनामों और हास्यरस की कहानियों को वे निश्चित रूप से तरज़ीह देते थे।

वे सर्वांतीस और बाल्ज़ाक को अन्य सभी उपन्यासकारों से ऊँचा स्थान देते थे। 'डॉन क्विक्ज़ोट' को वे उस दम तोड़ते हुए शौर्य का महाकाव्य समझते थे, जिसके गुणों की उदीयमान पूँजीवादी जगत में हँसी उड़ाई जाती थी, अवमानना की जाती थी। वे बाल्ज़ाक को इतना सराहते थे कि राजनीतिक अर्थशास्त्र पर अपनी कृति को समाप्त करते ही उनकी महान कृति *ला कॉमेडी ह्यूमेन* की समीक्षा लिखना चाहते थे। वे बाल्ज़ाक को महज़ अपने युग का इतिवृत्त-लेखक ही नहीं, बल्कि ऐसे भावी चरित्रों का सृष्टा भी मानते थे, जो लूई फ़िलिप के युग में अभी भ्रूण-रूप में थे और जो बाल्ज़ाक की मृत्यु के बाद नेपोलियन तृतीय के शासनकाल में ही पूर्णत: विकसित हुए थे।

मार्क्स सभी यूरोपीय भाषाएँ पढ़ सकते थे और जर्मन, फ़्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में लिखते हुए अपने को इतने सुन्दर ढंग से व्यक्त करने में समर्थ थे कि भाषा-पारखी मुग्ध हो उठते थे। वे इस उक्ति को बार-बार दोहराना पसन्द करते थे कि "जीवन-संघर्ष में विदेशी भाषा एक हथियार है।"

भाषाओं के लिए उनकी मेधा प्रबल थी, जो उनकी बेटियों को विरासत

में मिली। उन्होंने रूसी भाषा का अध्ययन तब शुरू किया, जब वे 50 साल के हो चुके थे और इस भाषा के कठिन होने के बावजूद छह महीने में ही उन्होंने इतनी रूसी सीख ली कि रूसी कवियों तथा गद्य-लेखकों की कृतियों का आनन्द लेने लगे। वे पुश्किन, गोगोल और श्चेद्रीन को अधिक पसन्द करते थे। उन्होंने रूसी भाषा इसलिए सीखी कि सरकारी जाँचों के उन दस्तावेज़ों को पढ़ सकें, जिनके प्रकाशन पर रूसी सरकार ने इसलिए रोक लगा दी थी कि उनसे भयानक तथ्य सामने आते थे। श्रद्धालु मित्रों ने मार्क्स के लिए उन दस्तावेज़ों को हासिल किया और पश्चिमी यूरोप में निश्चय ही वे अकेले राजनीतिक अर्थशास्त्री थे, जिसे उन दस्तावेज़ों की जानकारी थी।

कवियों और उपन्यासकारों के अलावा, मार्क्स के बौद्धिक विश्राम का एक और अद्‌भुत साधन गणित था, जिसमें उनकी विशेष रुचि थी। बीजगणित से तो उन्हें मानसिक सान्त्वना तक प्राप्त होती थी और अपने घटनापूर्ण जीवन की अधिकतम शोकमयी घड़ियों में वे उसका सहारा लेते थे। अपनी पत्नी की अन्तिम बीमारी के दौरान वे अपने नित्य के वैज्ञानिक कार्य में दत्तचित्त होने में असमर्थ थे और उनके लिए पत्नी के कष्ट से पैदा होनेवाले क्लेश से छुटकारा पाने का एकमात्र रास्ता गणित में डूब जाना ही था। मानसिक कष्ट की उस मुद्दत में उन्होंने अवकलन गणित पर एक पुस्तक लिखी, जिसका विशेषज्ञों की राय में भारी वैज्ञानिक मूल्य है और जो उनकी सम्पूर्ण कृतियों में प्रकाशित की जाएगी। उन्होंने उच्च गणित में द्वन्द्वात्मक गति का अधिकतम तार्किक और साथ ही अधिकतम सीधा-सादा रूप पाया। उनका विचार था कि जब तक कोई विज्ञान गणित का उपयोग करना नहीं सीख लेता, तब तक वस्तुतः विकसित रूप नहीं प्राप्त कर सकता।

यद्यपि मार्क्स के निजी पुस्तकालय में उनके आजीवन अनुसन्धान-कार्य के दौरान यत्नपूर्वक जमा की गयीं एक हज़ार से अधिक पुस्तकें थीं, फिर भी वे उनके लिए नाकाफ़ी थीं और मार्क्स सालों तक नियमित रूप से ब्रिटिश म्यूज़ियम में बैठकर अध्ययन करते रहे। वहाँ के पुस्तक-भण्डार की वे अत्यधिक सराहना करते थे।

मार्क्स के विरोधियों तक को उनके व्यापक तथा गहन पाण्डित्य का, सो भी न केवल उनके विशेष विषय - राजनीतिक अर्थशास्त्र में, बल्कि इतिहास, दर्शन और सभी देशों के साहित्य के क्षेत्र में भी, सिक्का मानना पड़ा।

मार्क्स रात को बहुत देर से सोते, लेकिन इसके बावजूद सुबह आठ और नौ बजे के बीच उठ जाते, थोड़ी काली कॉफ़ी पीते, अख़बार पढ़ते और तब अपने अध्ययनकक्ष में जाकर रात के दो या तीन बजे तक काम करते। वे

केवल खाना खाने और मौसम उपयुक्त होने पर हैम्पस्टेड हीथ* में शाम को टहलने के लिए ही काम छोड़ते। दिन में वे कभी-कभी सोफ़े पर घण्टा दो घण्टा सो लेते थे। जवानी में वे अक्सर सारी-सारी रात काम करते रहते थे।

मार्क्स को काम का व्यसन था। वे उसमें इतना डूब जाते थे कि अक्सर खाना भी भूल जाते थे। वे अक्सर कई बार बुलाए जाने पर नीचे खाने के कमरे में आते और आख़िरी ग्रास खाते न खाते फिर अपने अध्ययनकक्ष में पहुँच जाते।

वे बहुत अल्पाहारी थे और भूख की कमी के भी शिकार थे। खट्टी और चटपटी चीज़ें जैसेकि हैम, भुनी मछलियाँ, केवियर और अचार आदि खाकर वे भूख की कमी को दूर करने की कोशिश करते थे। मस्तिष्क की प्रकाण्ड क्रियाशीलता का फल पेट को भोगना पड़ता था।

उन्होंने अपने मस्तिष्क के लिए शरीर को क़ुर्बान कर दिया। चिन्तन उनका सबसे बड़ा सुख था। मैंने अक्सर उन्हें उनकी जवानी के दर्शन-गुरु हेगेल के शब्द दुहराते हुए सुना : "किसी कुकर्मी के अपराधमूलक चिन्तन में भी स्वर्ग के चमत्कारों से अधिक वैभव तथा गरिमा होती है"।

जीवन के इस असाधारण ढंग तथा क्लांतिकर दिमाग़ी काम के लिए उनके शारीरिक गठन का अच्छा होना ज़रूरी था। दरअसल उनकी काठी बड़ी मज़बूत थी, वे औसत से अधिक लम्बे, चौड़े कन्धों, उभरे सीने और सुगढ़ अंगों वाले व्यक्ति थे, हालाँकि टाँगों की तुलना में मेरुदण्ड किसी क़दर लम्बा था, जैसाकि यहूदियों के अक्सर होते हैं। अगर उन्होंने जवानी में व्यायाम किया होता, तो वे बहुत ही बलिष्ठ आदमी बन गये होते। केवल टहलना ही एक ऐसा शारीरिक व्यायाम था जो उन्होंने कभी भी नियमित रूप से किया। वे बातें और धूम्रपान करते हुए घण्टों चहलक़दमी कर सकते थे या पहाड़ियों पर चढ़ सकते थे और बिल्कुल थकते नहीं थे। कहा जा सकता है कि वे अपने कमरे में टहलते हुए ही काम करते थे और टहलते हुए जो कुछ सोच लेते थे उसे लिखने के लिए ही थोड़ी-थोड़ी देर को बैठ जाते थे। वे बातचीत करते हुए कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलना पसन्द करते थे और बीच-बीच में जब सम्भाषण अधिक जीवन्त अथवा बातचीत अधिक गम्भीर हो जाती थी, तो रुक जाते थे।

मैं हैम्पस्टेड हीथ में उनके सन्ध्या भ्रमण में सालों उनके साथ जाता रहा और उनके साथ चरागाहों में टहलते हुए ही मैंने अपनी अर्थशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। वे *पूँजी* का पहला खण्ड जैसे-जैसे लिखते जाते थे, वैसे-वैसे बिना

---

* लन्दन का पहाड़ी पार्क। - *स.*

ख़ुद इस बात पर ध्यान दिये मुझे उसका पूरा अन्तर्य समझाते जाते थे।

मैं जो कुछ उनसे सुनता था, घर लौटकर उसकी यथासम्भव, बेहतर से बेहतर टिप्पणियाँ तैयार करता। शुरू-शुरू में मार्क्स के गहन तथा जटिल तर्क को समझ पाना मेरे लिए कठिन होता था। दुर्भाग्यवश वे मूल्यवान टिप्पणियाँ अब मेरे पास नहीं हैं, क्योंकि पेरिस कम्यून के बाद पुलिस ने पेरिस और बोर्दो में मेरे काग़ज़ात छीनकर जला दिये थे।

मुझे उन टिप्पणियों को खो देने का सबसे ज़्यादा अफ़सोस है, जो मैंने उस शाम को लिखी थीं, जब मार्क्स ने अपने चारित्रिक प्रमाण-प्राचुर्य तथा तर्क-वैपुल्य के साथ मुझे मानव-समाज के विकास सम्बन्धी अपना तेजस्वी सिद्धान्त समझाया था। तब मुझे ऐसे लगा था मानो मेरी आँखों के सामने से परदा हट गया हो। मैंने पहले पहल विश्व-इतिहास की तर्कसंगति को स्पष्ट रूप से देखा और सामाजिक विकास के व्यापारों का, जो देखने में इतने अन्तरविरोधपूर्ण हैं, उनके भौतिक कारणों के साथ तालमेल बिठा पाया। मैं चकित रह गया और उसकी छाप बरसों तक बनी रही।

जब मैंने मैड्रिड के समाजवादियों के सामने अपनी अपर्याप्त शक्ति का पूरा ज़ोर लगाकर मार्क्स के उस सर्वाधिक तेजोमय सिद्धान्त की व्याख्या की, जो निस्सन्देह मानव-मस्तिष्क द्वारा सृजित एक महानतम सिद्धान्त है, तब उन पर भी ऐसा ही प्रभाव पड़ा।

मार्क्स का मस्तिष्क इतिहास तथा प्रकृति-विज्ञान के तथ्यों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के असाधारण भण्डार से भरपूर था। बरसों के बौद्धिक काम के दौरान संचित ज्ञान और ध्यान का उपयोग करने में वे अद्‌भुत रूप से दक्ष थे। उनसे किसी भी समय किसी भी विषय पर प्रश्न करके मनोवांछित अधिकतम ब्योरेवार उत्तर पाया जा सकता था, जो सदा सामान्य उपयोग के दार्शनिक विचारों से संयुक्त होता था। उनका मस्तिष्क चिन्तन के किसी भी क्षेत्र में पिल पड़ने के लिए बन्दरगाह पर भाप उगलते तैयार रणपोत की तरह था।

निस्सन्देह *पूँजी* के रूप में हमें आश्चर्यजनक ओज और प्रकाण्ड ज्ञान से भरपूर मस्तिष्क के दर्शन होते हैं। लेकिन मेरे लिए और मार्क्स को घनिष्ठतापूर्वक जाननेवाले सभी लोगों के लिए न तो *पूँजी* और न कोई अन्य कृति ही उनकी प्रतिभा की सारी विराटता अथवा उनके ज्ञान की सम्पूर्ण समृद्धता प्रदर्शित करती है। वे अपनी कृतियों से भी कहीं अधिक ऊँचे थे।

मैंने मार्क्स के साथ काम किया। मैं केवल लिपिक था, जिसे वे बोलकर लिखवाते थे। लेकिन उससे मुझे उनके सोचने और लिखने का ढंग देखने का सुयोग मिला। काम उनके लिए आसान होने के साथ ही कठिन भी था।

आसान इसलिए कि संगत तथ्यों तथा विचारों को उनकी पूर्णता में ग्रहण करना उनके मस्तिष्क के लिए आसान था। लेकिन वह पूर्णता ही उनके विचारों के प्रतिपादन को देरतलब और कठिन काम बना देती थी...

मार्क्स वस्तु के सारतत्त्व को ग्रहण करते थे। वे केवल रूप नहीं, बल्कि अन्तर्य भी देखते थे। वे सभी संघटक अवयवों की उनकी अन्योन्य क्रिया-प्रतिक्रिया में छानबीन करते थे। वे उनमें से सभी को अलग-अलग करके उनके विकास के इतिहास का पता लगाते थे। उसके बाद वे वस्तु से उसके परिवेश पर जाते थे और उनकी अन्योन्य क्रिया का निरीक्षण करते थे। वे फिर वस्तु के उद्‌गम की ओर लौटते थे, उसमें घटित हुए परिवर्तनों, क्रम-विकासों और उत्प्लवों का पता लगाते थे और अन्त में उसके दूरतम प्रभावों की जाँच की ओर अग्रसर होते थे। वे वस्तु को एकल, उसी में और उसी के लिए, उसके परिवेश से अलग नहीं, बल्कि एक अत्यन्त जटिल, निरन्तर गतिमान संसार को देखते थे।

मार्क्स उस पूरे संसार को उसकी बहुविध और निरन्तर परिवर्तनीय क्रिया और प्रतिक्रिया में उद्‌घाटित करना चाहते थे। फ़्लॉबेअर और गोंकूर की परम्परा के साहित्यकार शिकायत करते हैं कि जो कुछ दृश्यमान है उसका ठीक-ठीक वर्णन करना कितना कठिन है। लेकिन जो कुछ वे वर्णन करना चाहते हैं, वह मात्र ऊपरी स्तर है, मात्र उनके मन पर पड़ी छाप की अनुभूति है। उनकी साहित्यिक कृति मार्क्स की कृति की तुलना में बच्चों का खेल है। यथार्थ को इतनी गहराई से समझने के लिए असाधारण चिन्तन-शक्ति की आवश्यकता थी और जो कुछ उन्होंने देखा और कहना चाहा उसके वर्णन के लिए भी विरल कला की आवश्यकता कुछ कम नहीं थी।

मार्क्स अपनी कृति से कभी सन्तुष्ट नहीं होते थे, उसमें बाद में भी हमेशा परिवर्तन करते रहते थे और निरन्तर पाते थे कि उनकी अभिव्यक्ति उनके चिन्तन की ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाती।

मार्क्स में मेधावी चिन्तक के दो गुण विद्यमान थे। वे विषयवस्तु को उसके संघटक भागों में विलक्षणतापूर्वक विच्छिन्न कर देते थे और बाद में उसके सारे ब्योरों तथा उसके विकास के विभिन्न रूपों के साथ, उनकी आन्तरिक परस्पर-निर्भरता को उद्‌घाटित करते हुए, उसे पुनर्गठित कर देते थे। उनके तर्क अमूर्त विचार नहीं थे, जैसाकि चिन्तन करने में असमर्थ अर्थशास्त्री दावा करते थे। उनकी प्रणाली ज्यामितिज्ञ की प्रणाली नहीं थी, जो अपनी परिभाषाएँ आसपास के जगत से लेता है लेकिन अपने निष्कर्ष निकालने में यथार्थ की पूर्णत: उपेक्षा करता है। *पूँजी* में हम अलग-थलग परिभाषाएँ अथवा

अलग-थलग सूत्र नहीं पाते, यह अत्यन्त सारगर्भित विश्लेषणों की श्रृंखला प्रस्तुत करती है जो अधिक से अधिक हल्के रंगों और छोटे से छोटे भेदों को सामने लाता है।

मार्क्स इस प्रत्यक्ष तथ्य के कथन से प्रारम्भ करते हैं कि उस समाज की सम्पदा, जिसमें पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली का बोलबाला है, मालों के विराट संचयन में निहित है। इसलिए माल, जो गणितीय अमूर्तन नहीं, बल्कि मूर्त पदार्थ है, पूँजीवादी सम्पदा का घटक है, उसका प्रारम्भिक बीजकोष है। मार्क्स इस माल को पकड़ लेते हैं, उसे हर पहलू से पलटते हैं, यहाँ तक कि अन्दर-बाहर को उलटकर रख देते हैं और एक के बाद एक उसके रहस्यों को उद्घाटित करते जाते हैं, जिनसे आधिकारिक अर्थशास्त्री तनिक भी परिचित नहीं थे; हालाँकि वे रहस्य कैथोलिक धर्म के रहस्यों से अधिक बहुसंख्यक तथा गहन हैं। माल के प्रश्न की सर्वांगीण समीक्षा करके वे विनिमय में एक माल के साथ दूसरे माल के सम्बन्धों पर विचार करते हैं और फिर उसके उत्पादन तथा उस उत्पादन के विकास की ऐतिहासिक शर्तों पर आते हैं। वे माल के अस्तित्व के रूपों पर विचार करके दर्शाते हैं कि कैसे उनमें से एक रूप दूसरे में रूपान्तरित होता है, कैसे एक अनिवार्यतः दूसरे को जन्म देता है। वे व्यापारों के विकास की तार्किक गति को इतनी ख़ूबी और कमाल के साथ पेश करते हैं कि वह खुद मार्क्स की कल्पना प्रतीत हो सकती है, लेकिन फिर भी वह यथार्थ की देन है, माल की वास्तविक द्वन्द्वात्मकता का तथ्य-कथन है।

मार्क्स हमेशा बेहद ईमानदारी से काम करते थे। उनके द्वारा पेश किया गया हर तथ्य, हर आँकड़ा श्रेष्ठतम अधिकारियों के हवालों से पुष्ट होता था। वे अपूर्ण सूचनाओं से सन्तुष्ट नहीं होते थे। वे हमेशा खुद मूलस्रोत तक पहुँचते थे, चाहे उसमें कैसी भी कठिनाइयाँ क्यों न पेश आवें। किसी गौण तथ्य की पुष्टि के लिए भी वे ब्रिटिश म्यूज़ियम में पुस्तकें देखने जाते। उनके आलोचक यह कभी सिद्ध नहीं कर सके कि वे लापरवाह थे अथवा अपने तर्कों को ऐसे तथ्यों पर आधारित करते थे, जो जाँच की कड़ी कसौटी पर खरे न उतर सकें।

मूलस्रोत तक पहुँचने की इसी आदत के अनुसार वे अक्सर ऐसे लेखकों को पढ़ा करते थे, जो बहुत कम प्रसिद्ध थे और जिन्हें उद्धृत करनेवाले अकेले वे ही थे। *पूँजी* में ऐसे उद्धरण इतने अधिक हैं कि यह गुमान हो सकता है कि उन्होंने अपना व्यापक अध्ययन प्रदर्शित करने के लिए उन्हें जानबूझकर उद्धृत किया है। मार्क्स ऐसा कुछ नहीं चाहते थे। वे कहते थे, "मैं तो

ऐतिहासिक न्याय बरतता हूँ, प्रत्येक को उसका प्राप्य प्रदान करता हूँ।" वे अपने को उस लेखक का नामोल्लेख करने के लिए बाधित समझते थे, चाहे वह लेखक जितना भी नगण्य अथवा कम प्रसिद्ध क्यों न हो, जिसने किसी विचार को सबसे पहले अभिव्यक्त किया हो अथवा उसे अधिक से अधिक सही ढंग से निरूपित किया हो।

मार्क्स की साहित्यिक ईमानदारी भी उतनी ही ज़बरदस्त थी, जितनी वैज्ञानिक ईमानदारी। केवल इतना ही नहीं कि उन्होंने कभी किसी ऐसे तथ्य का हवाला नहीं दिया, जिसका उन्हें पूरा यक़ीन न हो, बल्कि पूर्ण पूर्वाध्ययन के बिना किसी विषय पर वे बात करने की भी आज़ादी नहीं लेते थे। उन्होंने पुनर्लेखन और सावधान परिमार्जन द्वारा अधिकतम उपयुक्त रूप में निखारे बिना एक भी कृति प्रकाशित नहीं करायी। किसी अधूरी चीज़ को लेकर जनता के सामने आने का विचार उन्हें असह्य था। अपनी पाण्डुलिपि को अच्छी तरह माँजे बिना उसे दिखाना तो उनके लिए सच्ची यातना थी। इस सम्बन्ध में तो वे इतने कठोर थे कि उन्होंने एक दिन मुझसे कहा कि मैं अपनी पाण्डुलिपि को अपूर्ण छोड़ने से उसे जला देना बेहतर समझता हूँ।

उनके काम करने का ढंग अक्सर उनके ऊपर ऐसे कार्यभार लाद देता था, जिनकी गुरुता की कल्पना पाठक मुश्किल से कर सकते हैं। मसलन, *पूँजी* में ब्रिटिश फ़ैक्टरी-क़ानून की बाबत लगभग 20 पृष्ठ लिखने के लिए उन्होंने इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के मज़दूर-आयोगों और फ़ैक्टरी-इंस्पेक्टरों की ढेरों सरकारी रिपोर्टें पढ़ डालीं। उन्होंने उन्हें शुरू से आख़िर तक पढ़ा, जैसाकि उनमें लगाए गये पेंसिल के निशानों से प्रकट है। उन रिपोर्टों को वे उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति के अध्ययन के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक दस्तावेज़ मानते थे। ये दस्तावेज़ जिन लोगों द्वारा तैयार किये गये थे, उनके बारे में मार्क्स की राय इतनी ऊँची थी कि उन्हें "ब्रिटिश फ़ैक्टरी-इंस्पेक्टरों जैसे दक्ष, निष्पक्ष और दृढ़-निश्चय आदमी यूरोप के किसी दूसरे देश में पाने की" सम्भावना में सन्देह था। उन्होंने *पूँजी* की भूमिका में उनकी बहुत प्रशंसा की है।

मार्क्स ने उन्हीं सरकारी रिपोर्टों से तथ्यगत सूचनाओं का एक भण्डार प्राप्त कर लिया। इन रिपोर्टों की मुफ़्त प्रतियाँ पानेवाले पार्लियामेण्ट के अनेक सदस्य उन्हें केवल चाँदमारी के निशाने के लिए इस्तेमाल करते थे और छिदे पन्नों की संख्या से पिस्तौल की आघात-शक्ति का हिसाब लगाते थे। कुछ दूसरे सदस्य उन्हें रद्दी के भाव बेच देते थे और यही सबसे अधिक समझदारी की बात थी, जो वे कर सकते थे, क्योंकि इस तरह मार्क्स उन्हें लाँग एकर में

पुरानी किताबों और दस्तावेज़ों की दुकान से, जहाँ वे उनकी तलाश में जाया करते थे, सस्ते दामों में ख़रीद सकते थे। प्रोफ़ेसर बीस्ली का कहना है कि मार्क्स ने ही ब्रिटेन की सरकारी जाँच रिपोर्टों का अधिकतम उपयोग किया और दुनिया को उनकी जानकारी कराई। पर उन्हें यह मालूम नहीं था कि 1845 से पहले ही ब्रिटेन के मज़दूर वर्ग की दशा पर अपनी पुस्तक लिखते समय एंगेल्स ने इन सरकारी रिपोर्टों से ढेरों दस्तावेज़ लिये थे।

2

उस हृदय को जानने और प्यार करने के लिए, जो विद्वान मार्क्स के सीने में धड़कता था, उन्हें उस समय देखना ज़रूरी था, जब वे अपनी किताबें और नोटबुक बन्द करके अपने परिवार के बीच, अथवा जब रविवार की शामों को अपने दोस्तों के साथ होते थे। उस समय वे बहुत ही ख़ुशगवार साथी साबित होते थे – हाज़िर-दिमाग़, मज़ाक़-पसन्द और दिल खोलकर हँसने में समर्थ। बातचीत के दौरान कोई पैनी उक्ति अथवा जवाबी फ़ब्ती सुनकर उनकी झुकी हुई घनी भौंहों के नीचे काली-काली आँखें ख़ुशी और व्यंग्यात्मक उपहास से चमक उठती थीं।

वे स्नेही, सहृदय और दयालु पिता थे। वे कहा करते थे कि "बच्चों को अपने माता-पिता का शिक्षण करना चाहिए।" उनके प्रति उनकी बेटियों का प्यार असाधारण था, जिनके साथ उनके सम्बन्धों में शासक पिता की कहीं झलक तक नहीं थी। वे उन्हें कभी कोई हुक्म नहीं देते थे। अगर उनसे कुछ चाहते थे, तो आभार के रूप में करने को कहते थे और अगर किसी काम के लिए मना करना चाहते थे, तो उन्हें महसूस कराते थे कि वह नहीं करना चाहिए। लेकिन इसके बावजूद किसी को बिरले ही उनके जैसे आज्ञाकारी बच्चे नसीब होंगे। बेटियाँ उन्हें अपना मित्र मानती थीं और वे उनसे साथी की तरह व्यवहार करती थीं। वे उन्हें पिता नहीं, बल्कि "मूर" कहती थीं। यह मज़ाक़िया नाम उन्हें अपने साँवले रंग और गहरे काले बालों तथा दाढ़ी के कारण प्राप्त हुआ था। दूसरी तरफ़ कम्युनिस्ट लीग के सदस्य उन्हें 1848 से पहले ही "पिता मार्क्स" कहते थे, जब वे अभी तीस साल के भी नहीं हुए थे...

मार्क्स अपने बच्चों के साथ खेलते हुए कभी-कभी घण्टों बिता देते थे। पानी भरे बड़े टब में होनेवाले समुद्री युद्ध और उन काग़ज़ी रणपोतों का जलाया जाना उन्हें अब तक याद है, जो मार्क्स उनके लिए बनाया करते थे और फिर उनमें आग लगा देते थे तथा जिन्हें जलते देखकर बच्चे बहुत ख़ुश

होते थे।

रविवारों को उनकी बेटियाँ उन्हें काम नहीं करने देती थीं। वे पूरे दिन उनकी मरज़ी के ताबे होते थे। अगर मौसम अच्छा होता, तो पूरा परिवार देहात में सैर के लिए जाता। रास्ते में वे किसी भटियारख़ाने में रुककर रोटी और पनीर के साथ अदरक की झागदार बियर पीते। जब उनकी बेटियाँ छोटी थीं, तब वे उन्हें चलते-चलते अन्तहीन अद्‌भुत कहानियाँ गढ़कर सुनाते जाते, दूरी की अधिकता अथवा कमी के लिहाज़ से उन कहानियों की घटनाओं को विस्तृत अथवा संक्षिप्त बनाते जाते, ताकि लम्बी सैर का फ़ासला कम महसूस हो और श्रोता अपनी थकान भूल जाएँ।

उनकी कल्पना अतुलनीय उर्वरा थी। उनकी प्रथम साहित्यिक कृतियाँ कविताएँ थीं। उनकी पत्नी ने अपने पति द्वारा जवानी में लिखी गयीं कविताएँ सावधानी से सँजो रखी थीं, लेकिन कभी किसी को दिखाती नहीं थीं। मार्क्स के माता-पिता ने उनके साहित्यिकार अथवा प्रोफ़ेसर बनने का स्वप्न पाला था और यह समझते थे कि समाजवादी आन्दोलन में पड़कर और राजनीतिक अर्थशास्त्र को अपना विषय चुनकर, जिसे तत्कालीन जर्मनी में उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था, वे अपने को हीन बना रहे हैं।

मार्क्स ने अपनी बेटियों से ग्राक्ख़सों* पर एक नाटक लिखने का वायदा किया था। दुर्भाग्य से वे अपनी बात रख न सके। वे, जो "वर्ग-संघर्ष के सूरमा" कहलाते थे, प्राचीन इतिहास के वर्ग-संघर्ष के उस भयानक तथा शानदार उपाख्यान का किस प्रकार परिपाठ करते, यह देखना दिलचस्प होता। मार्क्स की ढेरों योजनाएँ थीं, जिन्हें अमली शक्ल कभी नहीं दी जा सकी। अन्य विषयों के अलावा वे तर्कशास्त्र और दर्शन का इतिहास, जो नौजवानी में उनका प्रिय विषय था, लिखने का इरादा रखते थे। अपनी सारी साहित्यिक योजनाओं की तामीली और संसार को अपने मस्तिष्क में छिपी निधि का एक अंश भी भेंट करने के लिए उन्हें शतायु होना चाहिए था!

मार्क्स की पत्नी अधिक से अधिक सच्चे और पूरे अर्थ में जीवनपर्यन्त उनकी संगिनी रहीं। वे बचपन से एक-दूसरे को जानते थे और एकसाथ बड़े हुए थे। सगाई के समय मार्क्स की उम्र केवल 17 साल थी। नौजवान जोड़े को सात-साल इन्तज़ार करना पड़ा, तब कहीं 1843 में उनका विवाह हुआ। उसके बाद वे कभी अलग नहीं हुए। मार्क्स की पत्नी उनसे कुछ ही समय

---

* **ग्राक्ख़स, टाइबेरियस** (163-133 ई.पू.) तथा गैयस (153-121 ई.पू.) - भ्राता, प्राचीन रोम के जन-प्रवक्ता, जिन्होंने बड़ी भू-सम्पत्ति को सीमित करने के लिए कृषि क़ानूनों को अमल में लाने के लिए संघर्ष किया। - *स.*

मार्क्स परिवार की मित्र हेलेन देमुथ

पहले चल बसीं। यद्यपि वे एक अभिजात जर्मन परिवार में पैदा हुईं, फिर भी उनसे बढ़कर समता की भावना कभी किसी में नहीं रही होगी। उनके लिए सामाजिक हैसियत के आधार पर भेदभाव का अस्तित्व ही नहीं था। वे अपने घर में और अपने दस्तरख़ान पर काम की वर्दी पहने मेहनतकशों का उसी विनम्रता और शिष्टता के साथ सत्कार करती थीं, जैसेकि वे राजा-रईस हों। बहुत-से देशों के अनेक मज़दूरों को उनकी मेहमाननवाज़ी हासिल हुई और मुझे विश्वास है कि उनमें से किसी एक को भी यह गुमान न हुआ होगा कि अपने व्यवहार में निराडम्बर, उन्मुक्त हार्दिकता प्रदर्शित करनेवाली यह महिला मातृपक्ष से आर्गाइल के ड्यूक की वंशजा थीं और उनके भाई प्रशियाई बादशाह के मन्त्री थे। अपने कार्ल की अनुगामिनी बनने के लिए उन्होंने सब कुछ त्याग दिया था और घोर अभावों की घड़ी में भी उन्हें ऐसा करने का पछतावा नहीं हुआ था।

उनका दिमाग़ साफ़ और रोशन था। अपने मित्रों के नाम लिखे उनके सहज-सुगम पत्र ओजस्वी तथा मौलिक चिन्तन की अप्रतिम उपलब्धियाँ हैं। श्रीमती मार्क्स का पत्र पाना हर्ष-पर्व होता था। जोहान्न फ़िलिप बेकर* ने उनके कई पत्र प्रकाशित कराए। निर्मम व्यंग्यकार हाइने मार्क्स की वक्रोक्ति से डरते थे, और वे उनकी पत्नी की तीक्ष्ण तथा सूक्ष्म बुद्धि की बहुत सराहना करते थे। जब मार्क्स परिवार पेरिस में रहता था, तब हाइने उनके घर नियमित रूप से आने-जानेवालों में से थे। ख़ुद मार्क्स अपनी पत्नी की बुद्धि और आलोचना-शक्ति का इतना अधिक सम्मान करते थे कि उन्हें अपनी सारी पाण्डुलिपियाँ दिखाते थे और उनकी राय को बड़ा महत्त्व देते थे, जैसाकि उन्होंने ख़ुद 1866 में मुझसे कहा था। मार्क्स की पत्नी अपने पति की पाण्डुलिपियों की प्रेस के लिए नक़लें तैयार करती थीं।

श्रीमती मार्क्स के कई बच्चे हुए। उनमें से तीन बहुत छोटी उम्र में उन कठिनाइयों के दौर में मर गये जो 1848 की क्रान्ति के बाद परिवार को झेलनी पड़ीं। उस समय वे सोहो स्क्वेयर की डीन स्ट्रीट पर दो छोटे-छोटे कमरों में उत्प्रवासी जीवन बिता रहे थे। मैं केवल तीन बेटियों को ही जानता हूँ। 1865 में जब मार्क्स से मेरा परिचय हुआ, तब उनकी सबसे छोटी बेटी एल्योनोरा, अब श्रीमती एवेलिंग, लड़कों जैसे स्वभाव की मोहिनी बच्ची थीं। मार्क्स कहा करते थे कि उनकी पत्नी ने उसे बेटी के रूप में जन्म देकर

---

* **बेकर, जोहान्न फ़िलिप** (1809-1886) - जर्मन तथा अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के प्रख्यात नेता, पहले इण्टरनेशनल के सदस्य, पेशे से मज़दूर-ब्रशर; मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र और सहकर्मी। - *स.*

ग़लती की है। दूसरी दोनों बेटियाँ हर दृष्टि से पूर्ण भिन्नरूपता का अद्‌भुत नमूना थीं। सबसे बड़ी, अब श्रीमती लांगे, को पिता की तरह साँवला स्वस्थ रूप और आबनूसी बाल मिले थे। दूसरी, अब श्रीमती लफ़ार्ग, माँ की तरह थीं : गुलाबी रंग, स्वर्णाभा बिखराते घुँघराले केश कुण्डल, जिनमें मानो अस्तायमान सूर्य की रश्मियाँ निरन्तर दीप्तिमान रहती हों।

मार्क्स परिवार की एक और उल्लेखनीय सदस्य हेलेन देमुत थी। किसान परिवार की यह महिला अपने बचपन में, श्रीमती मार्क्स की शादी के बहुत पहले ही उनकी सेविका हो गयी थी और मालकिन की शादी के बाद भी उन्हीं के साथ बनी रही। अपनी तनिक भी परवाह न करते हुए उसने मार्क्स परिवार के लिये अपना पूर्ण उत्सर्ग कर दिया था। वह अपनी मालकिन और उनके पति के सारे यूरोपी भ्रमणों में उनके साथ और निर्वासन में उनकी सहभागी रही। वह घर की सचमुच शानदार प्रतिभा थी और अधिकतम कठिन परिस्थितियों में भी निस्तार का मार्ग ढूँढ़ निकालती थी। उसकी ही व्यवहारकुशलता, किफ़ायतसारी और चतुराई की बदौलत मार्क्स परिवार को कम से कम जीवन की आवश्यकतम वस्तुओं का तीख़ा अभाव कभी नहीं झेलना पड़ा। ऐसा कुछ भी नहीं था, जो वह न कर सकती हो। वह खाना पकाती थी, घर सँभालती थी, बच्चों के कपड़ों की देखभाल करती थी, उनके वस्त्रों की कटाई-सिलाई भी श्रीमती मार्क्स के साथ मिलकर करती थी। वह गृहसेविका और गृहस्वामिनी दोनों थी, वह ही सारी गृहस्थी चलाती थी।

बच्चे माँ की तरह उसे प्यार करते थे और उनके प्रति उसकी मातृत्व-भावना उसे माँ का अधिकार प्रदान करती थी। श्रीमती मार्क्स उसे दिली दोस्त मानती थीं और ख़ुद मार्क्स उसके प्रति अत्यन्त मैत्रीभाव रखते थे। वे उसके साथ शतरंज खेलते थे और उससे अक्सर हार जाते थे।

मार्क्स परिवार के प्रति हेलेन की अत्यधिक-अनुरक्ति थी। इस परिवार के सदस्य जो कुछ भी करते थे, उसकी निगाह में वह अच्छा होने के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था। उसे लगता था कि मार्क्स पर आक्षेप करनेवाले मानो ख़ुद उसी पर आक्षेप कर रहे हों। परिवार के साथ जिसकी भी घनिष्ठता हो गयी, उसी के साथ उसने मातृवत संरक्षकीय स्नेह व्यवहार किया। ऐसा लगता था, जैसे उसने उन सभी को, पूरे परिवार को गोद ले लिया था। वह मार्क्स और उनकी पत्नी की मृत्यु के बाद भी जीवित रही और तब एंगेल्स के घर जाकर उनकी देखभाल करने लगी। जब वह लड़की थी, तभी से एंगेल्स को जानती थी और उनके प्रति मार्क्स परिवार जैसा ही अनुराग रखती थी।

कहना चाहिए कि एंगेल्स भी मार्क्स परिवार के सदस्य थे। मार्क्स की बेटियाँ उन्हें अपना दूसरा पिता मानती थीं। वे मार्क्स का प्रतिरूप थे। जर्मनी में बहुत दिनों तक उनके नामों को अलग नहीं किया गया और इतिहास में वे सदा ही जुड़े रहेंगे।

मार्क्स और एंगेल्स हमारे युग में प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित मित्रता के आदर्श का मूर्त रूप थे। युवावस्था से ही उन दोनों का एकसाथ और एक ही दिशा में विकास हुआ, उनके बीच विचारों तथा भावनाओं की घनिष्ठतम हार्दिकता रही और उन्होंने एक ही क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दिया।

वे जब तक एकसाथ रह सके, तब तक मिलकर काम करते रहे। अगर घटनाओं ने उन्हें प्रायः बीस साल के लिए अलग न कर दिया होता, तो वे सम्भवः जीवनभर साथ ही काम करते रहते। लेकिन 1848 की क्रान्ति की पराजय के बाद एंगेल्स को मैनचेस्टर जाना पड़ा और मार्क्स लन्दन में रहने के लिए बाध्य हुए।

फिर भी एक-दूसरे को लगभग प्रतिदिन पत्र लिखकर, वैज्ञानिक तथा राजनीतिक घटनाओं और स्वीकृतियों पर अपनी राय प्रकट करके उन्होंने अपना सम्मिलित बौद्धिक जीवन जारी रखा। अपने काम से मुक्त होते ही एंगेल्स मैनचेस्टर से लन्दन आ गये और अपने प्यारे मार्क्स से दस मिनट की दूरी पर रहने लगे। 1870 से मार्क्स की मृत्यु तक कोई दिन ऐसा नहीं गुज़रा, जबकि दोनों व्यक्ति, कभी एक के तो कभी दूसरे के घर मिले न हों।

वह दिन, जब एंगेल्स ने सूचना दी कि मैं मैनचेस्टर से लन्दन आ रहा हूँ, मार्क्स परिवार के लिए उत्सव-पर्व बन गया। उनके प्रत्याशित आगमन की चर्चा बहुत पहले से होने लगी और उनके आगमन के दिन तो मार्क्स इतने उद्विग्न थे कि काम ही नहीं कर सके। दोनों मित्र साथ-साथ धुआँ उड़ाते, पीते-पिलाते सारी रात उन घटनाओं का ज़िक्र करते रहे, जो उनकी पिछली भेंट के बाद घटी थीं।

मार्क्स अन्य किसी भी व्यक्ति की तुलना में एंगेल्स की राय की अधिक क़द्र करते थे, क्योंकि मार्क्स के ख़्याल से एंगेल्स ही वह व्यक्ति थे, जो उनके सहकर्मी हो सकते थे। एंगेल्स में ही वे अपने पाठकों का सामूहिक रूप देखते थे। वे एंगेल्स को किसी बात के लिए क़ायल करने के निमित्त, उनसे अपना कोई विचार मनवाने के निमित्त कोई भी कोशिश उठा नहीं रखते थे। मिसाल के लिए, अल्बिगोइयों के राजनीतिक तथा धार्मिक युद्धों* से सम्बन्धित किसी गौण प्रश्न पर, जो अब मुझे याद नहीं रहा, एंगेल्स की राय को बदलने के लिए आवश्यक तथ्य ढूँढ़ने की ख़ातिर मैंने उन्हें पूरी की पूरी पोथियाँ बार-बार पढ़ते देखा था। एंगेल्स को अपनी राय से सहमत करके उन्हें

बेहद ख़ुशी होती थी।

मार्क्स को एंगेल्स पर गर्व था। मुझसे उनके सारे नैतिक तथा बौद्धिक गुणों का बखान करने में उन्हें आनन्द प्राप्त होता था। उन्होंने एक बार मुझे एंगेल्स से मिलाने के लिए ही मैनचेस्टर की यात्रा ख़ासतौर से की। वे एंगेल्स की बहुज्ञता की सराहना करते अघाते नहीं थे और उन्हें ज़रा-सा भी कुछ हो जाने पर चिन्तित हो उठते थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि "जब एंगेल्स किसी भी बाधा की परवाह न करते हुए मैदानों में घोड़े को सरपट दौड़ाते होते हैं, तब मैं इस भय से निरन्तर काँपता रहता हूँ कि शिकार के समय उनके साथ कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए, जब वे किसी भी बाधा की परवाह न करते हुए मैदानों में घोड़े को सरपट दौड़ाते होते हैं।"

मार्क्स जितने स्नेही पति और पिता थे, उतने ही अच्छे मित्र भी थे। उनकी पत्नी, बेटियाँ, एंगेल्स और हेलेन उन जैसे व्यक्ति के स्नेह-पात्र होने के योग्य भी थे।

3

मार्क्स ने रैडिकल बुर्जुआ वर्ग के एक नेता के रूप में अपनी सार्वजनिक सरगर्मी शुरू की थी। लेकिन ज्योंही उनके विरोध में अधिक तीव्रता आयी वैसे ही उन्होंने स्वयं को परित्यक्त पाया और समाजवादी बनते ही दुश्मन माने जाने लगे। उन्हें सताया गया और जर्मनी से निर्वासित कर दिया गया, उन्हें बदनाम किया गया और उन पर लाँछन लगाये गये। अन्त में उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व के विरुद्ध चुप्पी का षड्यन्त्र रचा गया। *अठारहवीं ब्रूमेर* से यह सिद्ध होता है कि मार्क्स 2 दिसम्बर, 1851 के तख़्तापलट** के कारणों और परिणामों की सच्ची प्रकृति को समझने और उद्घाटित करनेवाले 1848 के एकमात्र इतिहासकार और राजनीतिज्ञ थे, पर उनकी उक्त कृति की नितान्त उपेक्षा की गयी। इसके बावजूद कि यह युग के ज्वलन्त यथार्थ पर लिखी गयी रचना थी, किसी भी पूँजीवादी अख़बार ने उसका ज़िक्र तक नहीं किया।

*दरिद्रता का दर्शन** के उत्तर में लिखित *दर्शन की दरिद्रता* तथा

---

* **अल्बिगोयन युद्ध** (1209-1229) - ये युद्ध पोप के साथ मिलकर उत्तरी फ़्रांस के सामन्तों ने दक्षिण फ़्रांस के "विधर्मियों" के विरुद्ध लड़े, और दक्षिण फ़्रांस के अल्बी नगर के नाम पर अल्बिगोयन के नाम से प्रसिद्ध थे। अल्बिगोयन, जो ठाठदार कैथोलिक संस्कारों तथा धार्मिक पदसोपानक्रम के विरुद्ध थे, सामन्तवाद के विरुद्ध दक्षिणी नगरों की व्यापारिक-दस्तकार जनता का विरोध धार्मिक रूप में प्रकट करते थे। - *स.*

** 2 दिसम्बर, 1851 को फ़्रांसीसी जनतन्त्र के प्रेसीडेण्ट लूई बोनापार्ट ने (नेपोलियन प्रथम का भतीजा) तख़्तापलट किया, संविधान सभा को विसर्जित किया तथा अपने को जीवनभर के लिए प्रेसीडेण्ट घोषित किया। - *स.*

राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा नामक कृतियों की भी इसी प्रकार उपेक्षा की गयी। मौन के इस षड्यन्त्र को **पहले इण्टरनेशनल** और *पूँजी* के पहले खण्ड ने पन्द्रह साल बाद भंग किया। अब मार्क्स की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इण्टरनेशनल ने विकसित होकर संसार को अपनी उपलब्धियों से गौरवान्वित कर दिया। यद्यपि मार्क्स दूसरों को आगे बढ़ाते हुए स्वयं नेपथ्य में ही बने रहे, पर शीघ्र ही यह बात किसी से छिपी न रह सकी कि सूत्रधार कौन है।

जर्मनी में सामाजिक-जनवादी पार्टी की स्थापना हुई और वह एक ऐसी शक्ति बन गयी, जिसका दमन करने से पहले बिस्मार्क** ने उसके साथ पींगें बढ़ाने की चेष्टा की। लासालवादी*** श्वीट्ज़र ने मज़दूर जनता को *पूँजी* की जानकारी कराने के लिए लेखमाला प्रकाशित करायी, जिसकी मार्क्स ने बहुत सराहना की। जोहान फ़िलिप बेकर के प्रस्ताव पर इण्टरनेशनल की कांग्रेस ने सभी देशों के समाजवादियों से *पूँजी* पर "मज़दूर वर्ग की इंजील" के रूप में ध्यान देने की सिफ़ारिश की।

18 मार्च, 1871 के विद्रोह के बाद, जिसे इण्टरनेशनल का काम बताने की चेष्टा की गयी थी, और कम्यून की पराजय के बाद, जिसकी सभी देशों के पूँजीवादी अख़बारों की लाँछना के प्रतिकार का ज़िम्मा इण्टरनेशनल की जनरल कौंसिल ने अपने ऊपर ले लिया था, मार्क्स का नाम सारी दुनिया में ख्यात हो गया। वे वैज्ञानिक समाजवाद के महानतम सिद्धान्तकार और पहले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के संगठनकर्त्ता के रूप में मान्य हो गये।

पूँजी सभी देशों के समाजवादियों की पाठ्यपुस्तक बन गयी। समाजवादी और मज़दूर वर्ग के सभी अख़बार उसके वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे और न्यूयॉर्क की एक हड़ताल के दौरान मज़दूरों को डटे रहने की प्रेरणा देने और उनकी माँगों की न्यायोचितता को प्रदर्शित करने के लिए *पूँजी* के उद्धरण पर्चों के रूप में प्रकाशित और वितरित किये गये।

मुख्य यूरोपीय भाषाओं – रूसी, फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ी – में *पूँजी* के

---

* **दरिद्रता का दर्शन** – फ़्रांसीसी निम्न बुर्जुआ सार्वजनिक लेखक प्रूदों की पुस्तक। – *स.*

** **बिस्मार्क, ओटो** (1815-1898) – प्रशा के राजनीतिज्ञ, 1871 से जर्मन साम्राज्य के चांसलर। – *स.*

*** **लासालवादी** – निम्न बुर्जुआ समाजवादी फ़र्दीनान्द लासाल (1825-1864) के अनुयायी। मार्क्स और एंगेल्स ने लासालवाद के सिद्धान्तों, कार्यनीति तथा संगठनात्मक उसूलों की जर्मन मज़दूर आन्दोलन में अवसरवादी प्रवृत्ति कहकर कड़ी आलोचना की है। – *स.*

अनुवाद हुए और जर्मन, इतालवी, फ़्रांसीसी, स्पेनी और डच भाषाओं में उसके अंश प्रकाशित किये गये। यूरोप या अमेरिका में विरोधियों ने जब भी उसके सिद्धान्तों का खण्डन करने के प्रयास किये, मार्क्सवादियों ने उन्हें ऐसे जवाब दिये कि उनके मुँह बन्द हो गये। आज *पूँजी* वास्तव में "मज़दूर वर्ग की इंजील" बन गयी है, जैसाकि इण्टरनेशनल की कांग्रेस ने उसका नामकरण किया था।

अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन में गरमजोशी से भाग लेने के कारण मार्क्स को वैज्ञानिक काम के लिए कम समय मिलता था। उनकी पत्नी और सबसे बड़ी बेटी, श्रीमती लांगे, की मृत्यु से भी उस काम की हानि हुई।

अपनी पत्नी के प्रति मार्क्स का प्रेम अगाध और प्रगाढ़ था। उनके सौन्दर्य पर मार्क्स गर्व करते थे, उससे आनन्दविभोर होते थे। पत्नी के विनम्र तथा कोमल स्वभाव से मार्क्स के चिन्तापूर्ण और अनिवार्यत: अभावग्रस्त क्रान्तिकारी समाजवादी जीवन का बोझ हल्का हुआ। जेनी की बीमारी ने, जो उनकी मौत का कारण भी बनी, उनके पति की उम्र भी कम कर दी। उनकी लम्बी और दर्दनाक बीमारी के दौरान अनिद्रा के कारण तथा व्यायाम और ताज़ा हवा के अभाव में आत्मिक तथा शारीरिक रूप से श्रान्त-क्लान्त मार्क्स को निमोनिया हो गया जो आख़िर उनकी जान लेकर ही रहा।

श्रीमती मार्क्स कम्युनिस्ट और भौतिकवादी रहते हुए ही 2 दिसम्बर, 1881 को इस संसार से विदा हुईं। मृत्यु उनके लिए दुखदायी नहीं थी। जब उन्होंने अपना अन्त निकट आते देखा, तो बोलीं : "कार्ल, मेरी शक्ति जवाब दे रही है"। ये ही उनके अन्तिम स्पष्टत: उच्चरित शब्द थे।

वे हाईगेट क़ब्रिस्तान में असंस्कारित ("धर्मच्युत" लोगों के लिए अलग की गयी) भूमि में 5 दिसम्बर को दफ़नायी गयी। उनके और मार्क्स के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए इस बात की पूरी सावधानी बरती गयी थी कि उनकी अन्त्येष्टि को सार्वजनिक न बनाया जाए और केवल चन्द निकट के मित्र ही उनके चिरविश्राम-स्थल तक उनके साथ गये। मार्क्स के पुराने मित्र एंगेल्स ने अन्त्येष्टि-भाषण दिया...

पत्नी की मृत्यु के बाद मार्क्स का जीवन शारीरिक तथा आत्मिक दुखभोग की एक कड़ी बन गया, जिसे उन्होंने महान धैर्य के साथ झेला। वह सालभर बाद ही उनकी बड़ी बेटी, श्रीमती लांगे, की मृत्यु से और भी उग्र बन गया। वे टूट चुके थे और फिर कभी सँभल नहीं सके।

वे 65 साल की उम्र में 14 मार्च, 1883, को काम करते हुए ही चल बसे।

विल्हेल्म लीबनेख़्त*

मार्क्स के संस्मरणों के कुछ अंश

मुझसे सैकड़ों बार मार्क्स और उनके साथ अपने निजी सम्बन्ध की बाबत लिखने का तक़ाज़ा किया गया है और मैंने हर बार इन्कार कर दिया है। मैंने मार्क्स के प्रति गहरे सम्मान के कारण ही ऐसा किया था, क्योंकि शायद काम मेरे बस का नहीं था या समयाभाव के कारण उनकी बाबत जल्दबाज़ी में, बेढंगे तरीक़े से लिखना मार्क्स की स्मृति के लिए अपमानकर होता।

इस पर यह आपत्ति उठायी गयी कि सरसरी तौर से अंकित शब्द-चित्र का भी बेढंगा अथवा उतावली भरा होना आवश्यक नहीं है, कि मैं जो बातें बता सकता हूँ वह कोई और नहीं बता सकता, कि जो कुछ भी मार्क्स की बेहतर जानकारी में हमारे मज़दूरों और हमारी पार्टी की सहायता कर सकता है, वह निर्विवाद रूप से मूल्यवान है। तो या तो जो कुछ मुझे मालूम है उसे चाहे अपूर्ण ढंग से ही कहूँ या बिल्कुल मौन रहूँ? ज़ाहिर है कि पहली चीज़ ही बेहतर है। इस तरह मुझे अन्त में राज़ी होना पड़ा...

वैज्ञानिक, *राइनिश ज़ाइटुंग* के सम्पादक, *डाइचे फ़्रांज़ोसिस्शे यारबुख़ेर* के सहसंस्थापक, *कम्युनिस्ट घोषणापत्र* के सहलेखक, *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* के सम्पादक तथा *पूँजी* के रचयिता के रूप में मार्क्स समाज के हैं... उन मार्क्स की बाबत लिखना मेरे लिए मूर्खता होती, क्योंकि मेरे लिए अपने तात्कालिक दैनिक कामों से जितना थोड़ा समय निकाल सकना सम्भव था, उतने समय में उस तरह की चीज़ नहीं लिखी जा सकती थी। उसके लिए गम्भीर वैज्ञानिक कार्य की आवश्यकता होती। लेकिन उसके लिए मैं समय कहाँ से पाता?

इसलिए इस संक्षिप्त शब्द-चित्र में वैज्ञानिक तथा राजनीतिज्ञ मार्क्स का ज़िक्र मैं केवल प्रसंगवश और जीवनवृत्त के सिलसिले में ही करूँगा। मार्क्स

---

* **लीबनेख़्त, विल्हेल्म** (1826-1900) - जर्मन तथा अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के प्रख्यात नेता, जर्मन सामाजिक-जनवाद के एक संस्थापक तथा नेता; मार्क्स और एंगेल्स के मित्र और सहकर्मी। संस्मरण 1896 में प्रकाशित किये गये। - *स.*

का वह पक्ष हर किसी के लिए स्पष्ट है। मैं मार्क्स के उस मानवीय रूप को ही दर्शाने की चेष्टा करूँगा, जैसाकि मैं ख़ुद उसे जानता था।

1 मार्क्स के साथ पहली भेंट

मार्क्स की दोनों बड़ी बेटियों के साथ, जो उस समय 7 और 6 साल की थीं, मेरी मित्रता मेरे लन्दन पहुँचने के चन्द दिनों बाद शुरू हुई। मैं "आज़ाद" स्विट्ज़रलैण्ड की जेल से छूटकर फ़्रांस के रास्ते वहाँ पहुँचा था। मार्क्स परिवार से मेरी भेंट कहीं लन्दन के पास, मुझे याद नहीं कि ग्रीनविच में अथवा हैम्पटन कोर्ट में, मज़दूरों की कम्युनिस्ट शिक्षा समिति* के ग्रीष्मोत्सव के अवसर पर हुई।

"पिता मार्क्स", जिन्हें मैंने पहले नहीं देखा था, पैनी नज़र से मेरी आँखों में झाँकते और मेरे सिर को ग़ौर से जाँचते हुए तत्काल मेरी कठोर परख करने लगे...

परख सकुशल समाप्त हुई और मैं उस सघन काले केशमण्डित सिंहवत शीशवाले आदमी की तीक्ष्ण दृष्टि झेल गया। तब शुरू हुई दिलचस्प और हँसी-ख़ुशी की बातें और हम शीघ्र ही उल्लसित उत्सव-समारोही जमघट के बिल्कुल केन्द्र में पहुँच गये, जिसमें मार्क्स सबसे अधिक ज़िन्दादिलों में से एक दिखायी पड़ रहे थे। फ़ौरन श्रीमती मार्क्स, नौउम्री से ही उनकी वफ़ादार सहायिका हेलेन और सभी बच्चों से मेरा परिचय कराया गया। उस दिन से मैं मार्क्स के घर का अपना आदमी बन गया और लगभग हर दिन ही वहाँ जाने लगा। वे तब ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट के पास डीन स्ट्रीट पर रहते थे और मैंने पड़ोस में ही चर्च स्ट्रीट पर डेरा जमा लिया था।

2 पहली बातचीत

उपर्युक्त उत्सव में मिलने के दूसरे दिन मार्क्स के साथ मेरी पहली लम्बी बातचीत हुई। ज़ाहिर है कि हम लोग वहाँ कोई गम्भीर बातचीत नहीं कर सके थे, इसलिए मार्क्स ने अगले दिन मज़दूरों की शिक्षा समिति की इमारत में आने का निमन्त्रण दिया और कहा कि शायद एंगेल्स भी वहाँ होंगे।

मैं नियत समय से कुछ पहले ही पहुँच गया। मार्क्स अभी नहीं आये थे, लेकिन कई पुराने परिचितों से मुलाक़ात हो गयी और मैं उनके साथ

---

* मज़दूर शिक्षा समिति 1840 में लन्दन में स्थापित हुई। 1847-1850 में तथा 19वीं शताब्दी के सातवें तथा आठवें दशकों में वह मार्क्स के अत्यधिक प्रभाव में थी। – *स.*

उल्लासपूर्वक बातचीत में मस्त था, जब मार्क्स ने मेरा कन्धा थपथपाकर दोस्ताना ढंग से अभिवादन किया और कहा कि एंगेल्स "बैठकख़ाने" में हैं, जहाँ हम लोग अधिक निर्विघ्न रहेंगे।

मैं नहीं जानता था कि तथाकथित "बैठकख़ाने" से उनका क्या अभिप्राय है और मुझे लगा कि अब "बड़ी" परख शुरू होनेवाली है। फिर भी मैं भरोसे के साथ मार्क्स के पीछे-पीछे हो लिया। मार्क्स ने पहले दिन के समान ही मेरे मन पर प्रीतिकर प्रभाव डाला, उनमें भरोसा पैदा करने की अद्‌भुत क्षमता थी। वे मेरी बाँह में बाँह डालकर मुझे "बैठकख़ाने" में ले गये, जहाँ एंगेल्स काली बियर का मग लेकर बैठे हुए थे। उन्होंने हँसी-मज़ाक़ करते हुए मेरा स्वागत किया।

फुर्तीली परिचारिका एमी को फ़ौरन पीने और कुछ खाने के लिए लाने को कहा गया क्योंकि हम उत्प्रवासियों के लिए भोजन की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण थी। हम बैठ गये, मैं मेज़ की एक तरफ और मार्क्स तथा एंगेल्स दूसरी तरफ़। महोगनी की भारी मेज़, चमकते हुए जाम, फेनिल बियर, असली इंगलिश रोस्टबीफ़ की प्रत्याशा और धूम्रपान के लिए आमन्त्रित करते हुए मिट्टी के लम्बे-लम्बे पाइप – इन सारी चीज़ों से एक ऐसा सुखद वातावरण प्रस्तुत था कि मुझे डिकेन्स की कृति पर आधारित एक चित्र की बरबस याद आ गयी। लेकिन परीक्षा तो होनी ही थी! ख़ैर, कोई बात नहीं। मैं निभा लूँगा! बातचीत अधिकाधिक अनुप्राणित होती गयी...

गत साल जेनेवा में एंगेल्स से मिलने के पहले मार्क्स या एंगेल्स से मेरा कभी कोई व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं हुआ था। पेरिस के *यारबुख़ेर* में प्रकाशित मार्क्स के लेख, उनकी पुस्तक *दर्शन की दरिद्रता* तथा एंगेल्स की *इंग्लैण्ड में मज़दूर वर्ग की दशा*, इन दोनों की बस यही कृतियाँ मैंने पढ़ी थीं। 1846 से कम्युनिस्ट होते हुए भी मैं राइख़ संविधान आन्दोलन* के बाद एंगेल्स से मिलने के कुछ ही समय पहले *कम्युनिस्ट घोषणापत्र* हासिल कर सका था, हालाँकि मैं उसकी बाबत पहले से सुन चुका था और उसका अन्तर्य जानता था। जहाँ तक *न्यू राइनिश ज़ाइटुंग* का सम्बन्ध है, मैं उसे बहुत कम देख पाया था, क्योंकि उसके ग्यारह महीने के प्रकाशन-काल में या तो मैं विदेश में था, या जेल में, अथवा विद्रोही का अस्तव्यस्त तथा तूफ़ानी जीवन बिता रहा था।

मेरे दोनों परीक्षकों को मुझपर निम्न बुर्जुआ "जनवादिता" और "दक्षिणी जर्मन भावुकता" का सन्देह था और उन्होंने लोगों तथा चीज़ों की बाबत व्यक्त

---

* दक्षिण-पश्चिमी जर्मनी में क्रान्तिकारी संघर्ष 1849 के वसन्त तथा गर्मी में अखिल जर्मनी के (तथाकथित राइख़) संविधान के नाम पर चला। – *स.*

की गयी मेरी चन्द रायों की कड़ी आलोचना की... लेकिन कुल मिलाकर परीक्षा अच्छी ही रही और बातचीत धीरे-धीरे दूसरे विषयों पर पहुँच गयी।

शीघ्र ही हमारे बीच प्रकृति विज्ञान की चर्चा चल पड़ी और मार्क्स यूरोप के विजयी प्रतिक्रियावादी हल्क़ों की खिल्ली उड़ाने लगे, जो समझते थे कि उन्होंने क्रान्ति का गला घोंट दिया और यह अनुमान नहीं कर सकते थे कि प्रकृति विज्ञान नयी क्रान्ति की तैयारी कर रहा है। महारानी भाप ने पिछली सदी में सारी दुनिया में क्रान्ति पैदा कर दी थी, लेकिन आज उसने अपना सिंहासन खो दिया है और उसका स्थान उससे भी बड़ी क्रान्तिकारी शक्ति - बिजली की चिंगारी - ले रही है। इसी सिलसिले में मार्क्स ने बड़े उत्साह के साथ मुझसे बिजली के इंजन के उस नमूने की चर्चा की जो रीजेण्ट स्ट्रीट पर कुछ दिनों से प्रदर्शित था और जिससे रेलगाड़ी चलायी जा सकती थी।

उन्होंने कहा, "अब समस्या हल हो गयी और उसके परिणामों का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। आर्थिक क्रान्ति के बाद राजनीतिक क्रान्ति का होना लाज़िमी है, क्योंकि दूसरी तो पहली की अभिव्यक्ति मात्र है।"

मार्क्स ने जिस तरह विज्ञान और यान्त्रिकी के विकास की बात की, उससे उनका समस्त विश्वदृष्टिकोण, विशेषत: बाद में इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा कहलानेवाला दृष्टिकोण, इतना स्पष्ट हो गया कि मेरे रहे-सहे सन्देह भी वसन्ती धूप में बर्फ़ की तरह गल गये।

मैं उस रात घर नहीं लौटा। हम सुबह होने तक बतियाते, हँसते-हँसाते और पीते-पिलाते रहे और जब मैं बिस्तर पर गया तो दिन चढ़ चुका था। लेकिन मैं देर तक पड़ा नहीं रह सका। मुझे नींद नहीं आ रही थी, क्योंकि मेरे दिमाग़ में पिछली रात की सारी बातें चक्कर काट रही थीं और विचारों की तुमुल शृंखला ने मुझे बिस्तर छोड़कर सड़क पर निकल जाने के लिए बाध्य कर दिया।

मैं रीजेण्ट स्ट्रीट की ओर चल पड़ा, ताकि उस आधुनिक त्रायन घोड़े का नमूना देख सकूँ, जिसे पूँजीवादी समाज अपनी आत्मघाती अन्धता में गद्‌गद् होकर पुराने ट्रॉयवासियों की तरह अपने इलियन में लाया था और जिसे उसके अनिवार्य विनाश का कारण बनना था। Essetai heemar - पावन इलियन के पतन का दिन आ रहा है!

जहाँ उक्त इंजन प्रदर्शित था, वहाँ मुझे लोगों की भारी भीड़ दिखायी दी। मैं ठेलता हुआ आगे बढ़ा और शीशे के पीछे बिजली के इंजन और रेलगाड़ी के डिब्बों को तेज़ी से भागते हुए पाया...

यह बात 1850 के जुलाई महीने के शुरू की है।

3 मार्क्स - क्रान्तिकारियों के शिक्षक और गुरु

"मूर" हम "तरुणों" से 5 या 6 साल ही बड़े थे, लेकिन हमारे सम्बन्ध में अपनी परिपक्वता की गुरुता का उन्हें पूरा एहसास था और हम लोगों की, ख़ासकर मेरी, जाँच के लिए हर अवसर से लाभ उठाते थे। उनके प्रकाण्ड अध्ययन तथा अद्‌भुत स्मरण-शक्ति के कारण हममें से कइयों को लोहे के चने चबाने पड़ते थे। हममें से किसी न किसी "विद्यार्थी" को कोई टेढ़ा प्रश्न देकर और उसके आधार पर हमारे विश्वविद्यालयों तथा हमारी वैज्ञानिक शिक्षा की पूर्ण निस्सारता सिद्ध करने में उन्हें मज़ा आता था।

लेकिन उन्होंने शिक्षा भी दी और उनकी शिक्षा योजनाबद्ध थी। उनके बारे में मैं संकुचित और व्यापक दोनों अर्थों में कह सकता हूँ कि वे मेरे गुरु थे और यह बात सभी क्षेत्रों पर लागू होती है। राजनीतिक अर्थशास्त्र की तो मैं बात ही नहीं करता, क्योंकि पोप के महल में पोप की बात नहीं की जाती। कम्युनिस्ट लीग में राजनीतिक अर्थशास्त्र पर उनके व्याख्यानों की बात मैं बाद में करूँगा। मार्क्स को प्राचीन और आधुनिक भाषाओं का बहुत अच्छा ज्ञान था। मैं भाषाविद् था और अरस्तु अथवा एस्कीलस का कोई ऐसा कठिन अंश मुझे दिखाने का अवसर पाकर उन्हें बच्चों जैसी ख़ुशी होती थी, जो मैं फ़ौरन नहीं समझ सकता था। उन्होंने एक दिन मुझे इसलिए बहुत बुरा-भला कहा कि मैं... स्पेनी भाषा नहीं जानता था और किताबों के एक ढेर में से *डॉन क्विक्ज़ोट* निकालकर मुझे सबक़ देने लगे। मैं दीत्स लिखित लातीनी भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण से स्पेनी के व्याकरण तथा शब्द-विन्यास के नियम जान चुका था, इसलिए "मूर" के उत्कृष्ट पथप्रदर्शन और मेरे रुकने या लड़खड़ाने की सूरत में उनकी सतर्क सहायता से काम काफ़ी ठीक ढंग से चलता रहा। वे, जो वैसे तो इतने उतावले थे, पढ़ाने में कितने धैर्यवान थे! मिलनेवाले किसी व्यक्ति के आ जाने पर ही सबक़ का अन्त होता था। जब तक उन्होंने मुझे पर्याप्त योग्यता सम्पन्न नहीं समझ लिया, तब तक मुझसे रोज़ सवाल पूछते रहे और मुझे *डॉन क्विक्ज़ोट* अथवा अन्य किसी स्पेनी पुस्तक के अंश का अनुवाद करना पड़ता था।

मार्क्स अद्‌भुत भाषाविद् थे, यद्यपि प्राचीन भाषाओं से अधिक आधुनिक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्हें ग्रिम के जर्मन व्याकरण का अधिकतम अचूक ज्ञान था। वे ग्रिम-बन्धुओं के शब्दकोश को मुझ भाषाविद् की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझते थे। वे किसी अंग्रेज़ या फ़्रांसीसी की भाँति ही बढ़िया अंग्रेज़ी या फ़्रांसीसी लिख सकते थे यद्यपि उच्चारण इतना अच्छा नहीं था। *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून* के लिए उनके लेख क्लासिकीय अंग्रेज़ी में और प्रूदों

कम्युनिस्ट लीग के केन्द्रीय निकाय की एक मीटिंग

की *दरिद्रता का दर्शन* के विरुद्ध उनकी *दर्शन की दरिद्रता* क्लासिकीय फ़्रांसीसी में लिखे गये थे। छपने से पहले यह दूसरी रचना उन्होंने जिस फ़्रांसीसी मित्र को दिखायी, उन्होंने उसमें बहुत ही कम काट-छाँट की।

चूँकि मार्क्स भाषा का मर्म समझते थे और उन्होंने उसके उद्‌गम, विकास तथा विन्यास का अध्ययन किया था, अत: उनके लिए भाषाएँ सीखना कठिन नहीं था। लन्दन में उन्होंने रूसी सीखी और क्रीमियाई युद्ध के दौरान तुर्की और अरबी सीखने का भी इरादा किया, लेकिन उसे पूरा नहीं कर सके। भाषा पर सचमुच अधिकार जमाने के आकांक्षी के अनुरूप ही, वे पठन को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते थे। अच्छी स्मरण-शक्ति रखनेवाला व्यक्ति - और मार्क्स की स्मरण-शक्ति इतनी अद्‌भुत थी कि उन्हें कभी कुछ नहीं भूलता था - शीघ्र ही शब्द-भण्डार और पदविन्यास संचित कर लेता है। उसके बाद व्यावहारिक इस्तेमाल आसानी से सीखा जा सकता है।

मार्क्स ने 1850 और 1851 में राजनीतिक अर्थशास्त्र पर क्रमबद्ध रूप से कई व्याख्यान दिए। वे इसके लिए राज़ी तो नहीं थे, लेकिन चूँकि अपने कुछ निकटतम मित्रों के बीच निजी तौर से चन्द व्याख्यान दे चुके थे, इसलिए हमारे अनुरोध पर अधिक विस्तृत श्रोताओं के सामने भाषण करने को भी तैयार हो गये। उस व्याख्यान-माला में, जिसे सुननेवाले सभी सौभाग्यशाली श्रोताओं को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ, मार्क्स ने अपनी मतपद्धति के उसूलों को ठीक वैसे ही विकसित किया, जैसे *पूँजी* में उसका स्पष्टीकरण किया गया है। उस समय तक ग्रेट विण्डमिल स्ट्रीट पर ही स्थित कम्युनिस्ट शिक्षा-समिति के खचाखच भरे हॉल में, उसी हॉल में, जहाँ डेढ़ साल पहले *कम्युनिस्ट घोषणापत्र* स्वीकृत किया गया था, मार्क्स ने ज्ञान-प्रचार की उल्लेखनीय प्रतिभा प्रदर्शित की। वे विज्ञान के भ्रष्टीकरण, अर्थात् उसके मिथ्यापन, निकृष्टीकरण और जड़ीकरण, के अनन्य विरोधी थे। अपने विचारों को स्पष्टत: अभिव्यक्त करने में उनसे अधिक समर्थ कोई नहीं था। कथन की स्पष्टता चिन्तन की स्पष्टता का फल होती है और स्पष्ट विचार अनिवार्यत: स्पष्ट अभिव्यक्ति का कारण होते हैं।

मार्क्स बहुत ढंग से शिक्षण करते थे। वे संक्षिप्ततम सम्भव रूप में किसी प्रस्थापना का निरूपण करते और फिर अधिकतम सावधानी के साथ मज़दूरों की समझ में न आनेवाली अभिव्यक्तियों से बचते हुए उसकी विस्तृत व्याख्या करते। उसके बाद अपने श्रोताओं को प्रश्न पूछने के लिए आमन्त्रित करते थे। अगर प्रश्न न पूछे जाते, तो वे जाँच करना शुरू कर देते और ऐसी शैक्षणिक निपुणता के साथ जाँच करते कि कोई ख़ामी, कोई ग़लतफ़हमी उनकी निगाह

से बच नहीं रहती थी।

एक दिन इस निपुणता पर जब मैंने आश्चर्य प्रगट किया, तब मुझे बताया गया कि मार्क्स ब्रसेल्स की जर्मन मज़दूर समिति* में भी व्याख्यान दे चुके हैं। बहरहाल, उनमें श्रेष्ठ शिक्षक के सभी गुण मौजूद थे। शिक्षण में वे श्यामपट्ट का भी इस्तेमाल करते थे, जिस पर सूत्र लिख देते थे। उन सूत्रों में वे भी शामिल होते थे, जिन्हें हम सभी *पूँजी* के प्रारम्भिक पृष्ठों से ही जानते थे।

खेद की बात है कि व्याख्यान-माला केवल छह महीने अथवा उससे भी कम चली।

कम्युनिस्ट शिक्षा-समिति में ऐसे तत्त्व घुस आए, जिन्हें मार्क्स नापसन्द करते थे। उत्प्रवास की लहर के शान्त हो जाने पर समिति संकुचित हो गयी और उसने किसी क़दर संकीर्ण स्वरूप ग्रहण कर लिया। वाइटलिंग** और काबे*** के पुराने अनुयायियों ने फिर से सिर उठाया और मार्क्स उस समिति से अलग हो गये।

मार्क्स भाषा के मामले में हठधर्मिता की हद तक शुद्धतावादी थे। अपनी उत्तरी हेस्सी बोली के कारण, जो मुझसे त्वचा की भाँति चिपकी रही, अथवा मैं उससे चिपका रहा, मुझे अनेक बार उनकी खरी-खोटी सुननी पड़ी। मैं सिर्फ़ यह स्पष्ट करने के लिए इन छोटी-छोटी बातों का ज़िक्र कर रहा हूँ कि मार्क्स किस हद तक अपने को हम "नौजवानों" का शिक्षक समझते थे।

यह बात स्वभावतः दूसरे रूप में भी सामने आती थी : वे हमसे अत्यधिक का तक़ाज़ा करते थे। हमारी जानकारी में जैसे ही वे कोई कमी पाते, वैसे ही अत्यन्त ज़ोरदार ढंग से उसकी पूर्ति के लिए आग्रह करते और ऐसा करने के लिए आवश्यक सलाह भी देते। जो कोई भी उनके साथ अकेला रह जाता, उसकी बाक़ायदा परीक्षा लेने लगते और वे परीक्षाएँ कुछ खेल नहीं होती थीं। उनकी आँखों में धूल नहीं झोंकी जा सकती थी। अगर किसी पर अपनी मेहनत बेकार जाती देखते, तो उसके साथ उनकी दोस्ती का अन्त हो जाता। उनकी "मास्टरी" में होना हमारे लिए गौरव की बात थी। मैं

---

* **जर्मन मज़दूर समिति** - मज़दूरों के बीच राजनीतिक तथा वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के विचारों के प्रचार के हेतु अगस्त 1847 में मार्क्स और एंगेल्स द्वारा ब्रसेल्स में स्थापित की गयी। फ़्रांस में 1848 की बुर्जुआ फ़रवरी क्रान्ति के शीघ्र ही बाद इसका अस्तित्व समाप्त हो गया। - *स.*

* **वाइटलिंग, विल्हेल्म** (1808-1871) - काल्पनिक समतावादी कम्युनिज़्म के एक सिद्धान्तकार, पेशे से दर्ज़ी। - *स.*

** **काबे, एत्येन** (1788-1856) - काल्पनिक कम्युनिज़्म के विख्यात प्रतिनिधि, अमेरिका में कम्युनिस्ट बस्ती के संस्थापक। - *स.*

जब भी उनसे मिलता, अवश्य कुछ न कुछ सीखता...

उन दिनों ख़ुद मज़दूर वर्ग की एक नगण्य अल्पसंख्या ही समाजवाद के स्तर तक ऊपर उठी थी और समाजवादियों में भी मार्क्स की वैज्ञानिक शिक्षा के अर्थ में, *कम्युनिस्ट घोषणापत्र* के अर्थ में अल्पसंख्यक ही समाजवादी थे। अधिकतर मज़दूर, अगर वे राजनीतिक जीवन के प्रति कुछ जागरूक हुए भी थे, तो ऐसी भावुकतापूर्ण जनवादी आकांक्षाओं और लफ़्फ़ाज़ियों के कुहासे में फँसे हुए थे, जो 1848 के क्रान्तिकारी आन्दोलन, उसकी पूर्वपीठिका तथा परिणति के लिए चारित्रिक थीं। मार्क्स के लिए लोगों की शाबाशी और वाहवाही इस बात का सबूत होती थी कि आदमी ग़लत रास्ते पर है और दान्ते की यह गर्वोक्ति उनका प्रिय कथन थी कि "Segui il tuo corso, elascia dirle gentil" ("तुम अपनी राह चलते चलो, लोग कुछ भी कहें, कहने दो!")

अक्सर वे उक्त पंक्तियों का हवाला देते थे, जिनके साथ उन्होंने *पूँजी* की भूमिका भी समाप्त की थी। चोट, धक्के, अथवा मच्छरों और खटमलों के काटने के प्रति कोई भी उदासीन नहीं रह सकता। फिर मार्क्स ने, जिन पर हर तरफ़ से हमले होते रहते थे, रोटी की चिन्ता ने जिनका सत निकाल लिया था, जिन्हें वे मेहनतकश ही सही तौर से नहीं समझते थे जिनकी आज़ादी की लड़ाई के लिए उन्होंने रात के सन्नाटों में हथियार गढ़े थे और जो कभी-कभी कोरे बातूनियों, मक्कार ग़द्दारों या खुले दुश्मनों तक का अनुगमन करते हुए उनकी उपेक्षा भी करते थे - उन मार्क्स ने अपने को साहस तथा नूतन उत्साह से अनुप्राणित करने के लिए उन फ़्लोरेन्सी महापुरुष के उक्त शब्दों को अपने दैन्यपूर्ण, सही मानी में सर्वहारा अध्ययनकक्ष में कितना अक्सर मन ही मन दुहराया होगा!

उन्हें गुमराह नहीं किया जा सकता था। मार्क्स अलिफ़ लैला के शहज़ादे की तरह नहीं थे, जिसने विजय और उसके पुरस्कार को सिर्फ़ इस कारण खो दिया था कि वह अपने चारों तरफ़ के शोरशराबे और प्रेतछायाओं से भयभीत होकर बुज़दिली के साथ चौतरफ़ा देखता रह गया था। वे अपने उज्ज्वल लक्ष्य पर नज़र टिकाये हुए आगे बढ़ते गये...

वे वाहवाही से जितनी नफ़रत करते थे, वाहवाही के पीछे दौड़नेवालों पर उन्हें उतना ही ग़ुस्सा आता था। उन्हें लफ़्फ़ाज़ों से घृणा थी और अगर उनकी मौजूदगी में कोई लफ़्फ़ाज़ी के फेर में पड़ा तो उसकी तो शामत ही समझिए। ऐसे लोगों के प्रति वे निर्मम थे। उनकी ज़बान में "लफ़्फ़ाज़" सबसे बड़ी गाली थी और जिसे वे एकबार लफ़्फ़ाज़ कह देते थे, उसके साथ हमेशा के

लिए सम्बन्ध तोड़ लेते थे। हम "नौजवानों" के सम्मुख वे "तार्किक चिन्तन और स्पष्ट अभिव्यक्ति" की आवश्यकता पर ज़ोर देते रहते थे और हमें अध्ययन के लिए मजबूर करते थे।

उस समय तक ब्रिटिश म्यूज़ियम का पुस्तकों के अपार भण्डारवाला शानदार वाचनालय निर्मित हो चुका था। मार्क्स वहाँ रोज़ जाते थे और हमसे भी जाने का तक़ाज़ा करते थे। "अध्ययन करो, अध्ययन करो" – यह था उनका दो टूक आदेश, जो हमें अक्सर सुनने को मिलता था और जो अपने महान मस्तिष्क के सतत कार्य की अपनी निजी मिसाल द्वारा भी वे हमें देते रहते थे।

दूसरे उत्प्रवासी जब हर दिन विश्व-क्रान्ति की योजनाएँ बनाया करते थे और "क्रान्ति कल शुरू हो जाएगी" – जैसे अफ़ीमी नारों से अपने को मदमस्त रखते थे, हम, "गन्धकी गिरोहिए", "डाकेजन", "मानवजाति की तलछट", ब्रिटिश म्यूज़ियम में अपना समय बिताते थे और अपने को शिक्षित करने तथा भविष्य की लड़ाई के लिए शस्त्रास्त्र तैयार करने की कोशिश करते थे।

कभी-कभी हमारे पास खाने को कुछ भी नहीं होता था, फिर भी हम म्यूज़ियम ज़रूर जाते थे। कारण कि वहाँ बैठने को आरामदेह कुर्सियाँ होती थीं और जाड़ों में वह स्थान हमारे घरों की तुलना में (जिनके अपने घर थे भी) अधिक गर्म तथा सुखद होता था।

मार्क्स कठोर शिक्षक थे। वे केवल हमसे अध्ययन करने का तक़ाज़ा ही नहीं, बल्कि इस बात की जाँच भी करते थे कि हम सचमुच अध्ययन करते हैं।

मैं बहुत अर्से तक ब्रिटिश ट्रेड-यूनियनों के इतिहास का अध्ययन करता रहा। वे हर रोज़ मुझसे पूछते कि मैं कहाँ तक पहुँचा हूँ और जब तक मैंने एक बड़ी सभा में एक लम्बी वक्तृता नहीं दे डाली, उन्होंने मुझे चैन नहीं लेने दिया। वे सभा में मौजूद थे। उन्होंने मेरी प्रशंसा नहीं की, लेकिन कड़ी आलोचना भी नहीं की। चूँकि प्रशंसा करने की उनकी आदत नहीं थी और करते भी थे तो केवल दया भाव से, इसलिए उनकी प्रशंसा के अभाव पर मैंने अपने मन को तसल्ली दे ली। फिर जब वे मेरी एक प्रस्थापना पर मुझसे बहस में उलझ गये, तो मैंने उसे अप्रत्यक्ष प्रशंसा ही समझा।

मार्क्स में शिक्षक का एक विरल गुण था : वे कठोर होते हुए भी हतोत्साहित नहीं करते थे। उनका दूसरा, उल्लेखनीय गुण यह था कि वे हमें आत्मालोचना के लिए बाध्य करते थे और हमारी उपलब्धियों से हमें आत्मतुष्ट

नहीं होने देते थे। वे सारहीन चिन्तन पर अपनी व्यंगोक्तियों के निर्मम चाबुक बरसाते थे।

4 मार्क्स की शैली

अगर बूफ़ों* का यह कथन कि "शैली ही व्यक्ति है" किसी के बारे में सही है, तो मार्क्स के बारे में ही। मार्क्स की शैली ही मार्क्स है। बेहद सच्चे, सत्य की उपासना के अतिरिक्त और कोई उपासना न जाननेवाले, परिश्रमपूर्वक उपलब्ध अपने किसी प्रिय सैद्धान्तिक निष्कर्ष की असारता समझ में आते ही उसे फ़ौरन त्याग देनेवाले मार्क्स लाज़िमी तौर पर अपनी कृतियों में उसी रूप में सामने आए हैं, जैसे वे यथार्थ में थे। पाखण्ड, मक्कारी अथवा छल-छद्म में असमर्थ, वे जीवन की भाँति अपनी कृतियों में भी सदा अपने असली रूप में दिखायी देते हैं। स्वभावतः, ऐसी बहुमुखी, सर्वग्राही और सर्व-समावेशी व्यक्तित्व की शैली भी कम जटिल, कम व्यापक व्यक्तित्व की भाँति एकरस, सपाट, यहाँ तक कि नीरस भी नहीं हो सकती थी। *पूँजी* के मार्क्स, *अठारहवीं ब्रूमेर* के मार्क्स और *श्रीमान् फ़ोग्ट* के मार्क्स तीन भिन्न-भिन्न मार्क्स हैं, पर अपनी भिन्नता के बावजूद वे एक ही मार्क्स हैं, उनके त्रियत्व में एकत्व है, उनके महान व्यक्तित्व का एकत्व, जो विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में अपने को अभिव्यक्त करता है और फिर भी सतत वही बना रहता है।

पूँजी की शैली बेशक कठिन है, लेकिन क्या उसका विषय आसान है? शैली केवल व्यक्ति ही नहीं होती, वह सामग्री भी है, उसे अवश्य ही सामग्री के अनुकूल होना चाहिए। विज्ञान का कोई सीधा-सरल मार्ग नहीं है, उसकी मंज़िल पर पहुँचने के लिए तो हर किसी को, चाहे उसके साथ श्रेष्ठतम निदेशक भी क्यों न हों, पूरा ज़ोर लगाना पड़ता है। *पूँजी* के बारे में यह शिकायत करना कि उसकी शैली कठिन, दुर्बोध अथवा बोझिल है, केवल अपनी मानसिक काहिली अथवा चिन्तन की अक्षमता स्वीकारना है।

क्या *अठारहवीं ब्रूमेर* अबोधगम्य है? क्या वह तीर अबोधगम्य है, जो सीधे निशाने पर जा लगता है और उसमें गहरे धँस जाता है? क्या वह बर्छा अबोधगम्य है, जो सधे हाथों से फेंके जाने पर सीधे दुश्मन के कलेजे में उतर जाता है? *अठारहवीं ब्रूमेर* के शब्द तीर और बर्छे हैं, वह ऐसी शैली है, जो गहरे घाव का निशान छोड़ती और हनन करती है। अगर घृणा, तिरस्कार और स्वतन्त्रता का ज्वलन्त प्रेम कभी दहकते, उन्मूलक तथा उदात्त शब्दों में

---

* **बूफ़ों, जार्ज लूई** (1707-1788) - प्रख्यात फ़्रांसीसी प्रकृतिविद्। - *स.*

अभिव्यक्त हुआ है, तो *अठारहवीं ब्रूमेर* में ही, जिस में तासितुस* की आक्रोशभरी कठोरता के साथ जुवेनाल** का घातक व्यंग्य तथा दान्ते का नैसर्गिक कोप मिश्रित है। यहाँ शैली – style – रोमियों की stilus, यानी वह ताखा फ़ौलादी stiletto – कील – बन जाती है, जो लिखने और गाड़ने के काम में आती थी। शैली एक कटार है, जो दिल पर अचूक वार करती है।

फिर *श्रीमान् फ़ोग्ट* में कितनी प्रखर व्यंजना है, फ़ल्स्ताफ़*** और उसके रूप में विडम्बना का अनन्त स्रोत प्राप्त करना कैसा शेक्सपियरी उल्लास है!

मार्क्स की शैली सचमुच मार्क्स के ही अनुरूप है। इस बात के लिए उनकी भर्त्सना की गयी है कि उन्होंने कम से कम शब्दों में अधिकतम सम्भव अन्तर्य घुसेड़ने की चेष्टा की है। लेकिन यही तो मार्क्स हैं।

मार्क्स अभिव्यक्ति की सटीकता और सुस्पष्टता को बेहद महत्त्व देते थे और भाषा के क्षेत्र में गेटे, लेस्सिंग, शेक्सपियर, दान्ते और सर्वांतीस को अपने गुरु मानते थे, जिनकी कृतियों का वे प्रायः नित्य अध्ययन करते थे। भाषा की शुद्धता और अचूकता के मामले में वे अत्यधिक सतर्क थे। मुझे याद है कि मेरे लन्दन-प्रवास के शुरू के दिनों में जब मैंने अपने एक लेख में, "stattgehabte Versammlung" लिखा था, तो उन्होंने मुझे कैसे फटकारा था। मैंने रूढ़ प्रचलन का सहारा लेकर अपना पक्षपोषण किया, लेकिन मार्क्स उबल पड़े : "लानत है उन जर्मन स्कूलों पर, जहाँ जर्मन भाषा भी नहीं पढ़ायी जाती, लानत है जर्मन विश्वविद्यालयों पर", इत्यादि। मैंने क्लासिकीय साहित्य से उदाहरण प्रस्तुत करके, जितना भी कर सकता था उतना, अपना पक्षपोषण किया। लेकिन "stattgehabte" अथवा "stattgefundene" Ereignisse का फिर कभी प्रयोग नहीं किया और दूसरों से भी उसका प्रयोग छुड़वाने की कोशिश की।

मार्क्स कठोर शुद्धतावादी थे और समुचित अभिव्यक्ति के लिए अक्सर परिश्रमपूर्वक देर तक सर खपाते रहते थे। वे विदेशी शब्दों का अनावश्यक उपयोग बरदाश्त नहीं कर पाते थे और अगर विषय की माँग न होने पर भी उनका अक्सर उपयोग करते थे, तो इसका कारण विदेशों में, विशेषतः इंग्लैण्ड

---

* **तासितुस** (55-लगभग 120) – विख्यात रोमन इतिहासकार। – *स.*

** **जुवेनाल** (पहली शताब्दी का मध्य-सन् 127 के बाद) – प्रसिद्ध रोमन प्रहसन कवि। – *स.*

*** शेक्सपियर के *राजा हेनरी चतुर्थ* और *विण्डसर की प्रोत्फुल्ल नारियाँ* नाम के नाटकों का एक पात्र। – *स.*

में, उनका लम्बा प्रवास ही समझा जाना चाहिए... लेकिन अपने जीवन का दो-तिहाई भाग विदेशों में गुज़ारने के बावजूद मार्क्स में जो मौलिक, विशुद्ध जर्मन शब्द-विन्यास तथा व्यवहार मिलते हैं, वे उन्हें जर्मन भाषा का महान अधिकारी बना देते हैं, जिसके वे एक प्रमुखतम आचार्य तथा निर्माता थे...

5 मार्क्स - राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक तथा मानव

मार्क्स राजनीति को विज्ञान मानते थे। वे क़हवाख़ाने के राजनीतिज्ञों और क़हवाख़ानों की राजनीति से नफ़रत करते थे। वास्तव में, क्या इससे बड़ी किसी हिमाक़त की कल्पना की जा सकती है?

इतिहास मानव और प्रकृति में क्रियाशील सारी शक्तियों की, मानवीय चिन्तन, मानवीय उद्वेगों और मानवीय आवश्यकताओं की उपज है। लेकिन सिद्धान्त के रूप में राजनीति "समय के चर्खे पर" कतनेवाले करोड़ों-अरबों कारकों का बोध है और व्यवहार के रूप में वह उक्त बोध पर आधारित कार्रवाई है। इसलिए राजनीति विज्ञान है और व्यावहारिक विज्ञान है...

मार्क्स जब ऐसे बुद्धिहीनों की बात करते थे, जो चन्द घिसे-पिटे फ़िक़रों के ज़रिए सभी चीज़ों की व्याख्या करते हैं और अपनी कमोबेश उलझी हुई कामनाओं तथा कल्पनाओं को तथ्य मानकर रेस्तराओं की मेज़ों पर, अख़बारों के कार्यालयों, सार्वजनिक सभाओं अथवा संसदों में संसार की नियति निर्धारित करते हैं, तब वे रोष में आ जाते थे। सौभाग्यवश ऐसे लोगों की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। ऐसे बुद्धिहीनों में कभी-कभी बहुत प्रख्यात और महिमामण्डित "महापुरुष" भी होते हैं।

इस सिलसिले में मार्क्स केवल आलोचना ही नहीं करते थे, बल्कि स्वयं उच्च उदाहरण भी प्रस्तुत करते थे। विशेषत: फ़्रांस की नवीनतम घटनाओं और नेपोलियन द्वारा तख़्तापलट से सम्बन्धित अपने लेखों तथा *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून* के संवादों में उन्होंने राजनीतिक इतिहास-लेखन के क्लासिकीय नमूने प्रस्तुत किए।

हठात् एक तुलना दिमाग़ में आती है, जिसे प्रस्तुत किये बिना नहीं रहा जाता। बोनापार्ट का तख़्तापलट, जिसके सम्बन्ध में मार्क्स ने *अठारहवीं ब्रूमेर* में लिखा है, वही महानतम फ़्रांसीसी रूमानी लेखक तथा वाग्विदग्ध विक्टर ह्यूगो की एक प्रख्यात कृति का भी विषय बना। लेकिन दोनों कृतियों तथा दोनों लेखकों में कितनी विषमता है! एक ओर है अटपटा वागाडम्बर और वागाडम्बरपूर्ण अटपटापन तथा दूसरी ओर - व्यवस्थित ढंग से संकलित तथ्य, उन तथ्यों को धैर्यपूर्वक तौलनेवाला वैज्ञानिक और रोष भरा राजनीतिज्ञ,

जिसका रोष उसके विवेक को धुँधला नहीं बनाता।

एक ओर तो तरंगित, जाज्वल्यमान फ़ेनिलता; भावावेगपूर्ण वाग्मिता के विस्फोट; विरूप व्यंग्य-चित्रण हैं और दूसरी ओर - प्रत्येक शब्द सुसन्धानित है, प्रत्येक वाक्य तथ्य-गर्भित अभियोग है, नग्न सत्य है, जिसकी नग्नता अभिभूतकारी है; वह आक्रोश नहीं, बल्कि यथार्थ को उद्घाटित करनेवाला सीधा-सादा वक्तव्य है। विक्टर ह्यूगो की कृति *नेपोलियन ल पेटी* (छोटा नेपोलियन) के एक पर एक दस संस्करण हुए, लेकिन आज वह किसी को भी याद नहीं है। मार्क्स की कृति *अठारहवीं ब्रूमेर* हज़ारों बरस बाद भी शौक़ से पढ़ी जायेगी।

जैसाकि मैं अन्यत्र कह चुका हूँ, मार्क्स जो कुछ थे, वह केवल ब्रिटेन में ही बन सकते थे। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए एक ऐसे देश में, जैसाकि जर्मनी वर्तमान शताब्दी के मध्य तक था, मार्क्स के लिए पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की अपनी आलोचना तथा उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली की जानकारी तक पहुँचना उतना ही असम्भव था, जितना कि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े जर्मनी में आर्थिक दृष्टि से विकसित ब्रिटेन की राजनीतिक संस्थाओं का अस्तित्व में आना। किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह मार्क्स भी अपने परिवेश तथा उन स्थितियों पर आश्रित थे, जिनमें वे रहे और जिनके बिना वे वह नहीं बन सकते थे, जो थे। इस बात को उनसे बढ़कर किसी ने साबित नहीं किया।

ऐसी मेधा को परिवेश से प्रभावित होते और समाज के मर्म में अधिकाधिक गहरे उतरते हुए देखना ख़ुद अपनेआप में अत्यधिक मानसिक आनन्द का विषय था। मैं अपने उस सौभाग्य की जितनी भी सराहना करूँ उतनी ही कम है कि मुझ अनुभवहीन, ज्ञानपिपासु युवक को मार्क्स जैसा पथप्रदर्शक प्राप्त हुआ और मैं उनके प्रभाव तथा उनकी शिक्षा का लाभ उठा सका।

उस बहुमुखी, मैं तो कहूँगा कि सर्वतोमुखी मेधा की, उस मेधा की, जो सर्वग्राही थी, जो प्रत्येक तात्त्विक ब्योरे की तह तक पहुँचती थी, जो किसी भी चीज़ का तिरस्कार नहीं करती थी और किसी भी चीज़ को निस्सार अथवा अनुल्लेखनीय नहीं समझती थीं, उस मेधा की शिक्षा का भी बहुमुखी होना लाज़िमी था।

मार्क्स उन लोगों में से थे, जिन्होंने सबसे पहले डार्विन की खोजों का महत्त्व समझा था। 1859 से भी पहले, जो *प्रजातियों के उद्भव* के, तथा एक अजीब संयोग के फलस्वरूप मार्क्स लिखित *राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा*

का एक प्रयास के भी प्रकाशन का वर्ष था, मार्क्स ने डार्विन के युगान्तरकारी महत्त्व को समझ लिया था। कारण कि डार्विन शहर के कोलाहल से दूर, अपने शान्त जागीरी देहात में, उसी प्रकार की क्रान्ति की तैयारी कर रहे थे, जैसी क्रान्ति के लिए ख़ुद मार्क्स संसार के कोलाहलपूर्ण केन्द्र में काम कर रहे थे। अन्तर केवल यह था कि वहाँ उत्तोलक दूसरे बिन्दु पर लगा हुआ था।

मार्क्स हर नये प्रकाशन पर नज़र रखते थे और हर प्रगति की ओर ध्यान देते थे और प्रकृतिविज्ञानों, जिनमें भौतिकी तथा रसायन भी शामिल हैं, तथा इतिहास के बारे में यह विशेषत: सही है। हमारे बीच मोलेशा, लीबीख़ और हक्सले* के नाम, जिनके सुबोध व्याख्यान हम आस्थापूर्वक सुनते थे, उतने ही अक्सर सुनायी देते थे, जितने रिकार्डो, ऐडम स्मिथ, मैक-कुल्लोह** और स्कॉटलैण्डी तथा इतालवी अर्थशास्त्रियों के। जब डार्विन ने अपनी खोजों के निष्कर्ष निकाले और उन्हें समाज के सामने प्रस्तुत किया, तब हमने डार्विन तथा उनकी वैज्ञानिक खोजों के प्रकाण्ड महत्त्व के अतिरिक्त महीनों तक और किसी सम्बन्ध में बात ही नहीं की...

दूसरों की योग्यता को स्वीकार करने में मार्क्स अत्यधिक उदार तथा न्यायप्रिय थे। वे इतने महान थे कि ईर्ष्या, द्वेष तथा अहंकार उनके पास नहीं फटक सकते थे। लेकिन छद्म महानता तथा मिथ्या यशस्विता की तड़क-भड़क दिखानेवाली अयोग्यता और छिछोरेपन से उन्हें उतनी ही अधिक घृणा थी, जितनी छल-कपट और ढोंग से।

मेरे महान, लघु, अथवा औसत परिचितों में से मार्क्स उन इने-गिने लोगों में से एक थे, जिन्हें अहंकार छू तक नहीं गया था। वे इतने महान, इतने सशक्त थे और उनमें इतना अधिक बड़प्पन था कि अहंकारी हो ही नहीं सकते थे। उन्होंने कभी कोई मुद्रा नहीं बनायी, सदा जो थे वही रहे। वे मुद्रा बनाने अथवा छद्म रूप धारण करने में शिशुवत् असमर्थ थे। जब तक सामाजिक अथवा राजनीतिक कारण अवांछनीय नहीं बना देते थे, तब तक वे अपने दिल की बात पूरी तरह और बिना किसी संकोच के कह डालते थे

---

* **मोलेशात, जैकब** (1822-1893) - हालैण्ड के शरीरक्रियाविज्ञानी, भोड़े भौतिकवाद के प्रतिनिधि। **लीबीख़, यूस्तम** (1803-1873) - प्रख्यात जर्मन वैज्ञानिक, कृषिरसायन के संस्थापकों में से एक। **हक्सले, टॉमस हेनरी** (1825-1895) - ब्रिटिश प्रकृतिविज्ञानी, डार्विन के घनिष्ठ सहकर्मी तथा उनकी शिक्षा के प्रचारक। - *स.*

** **रिकार्डो, डेविड** (1772-1823), **स्मिथ, ऐडम** (1723-1790) - ब्रिटिश अर्थशास्त्री, क्लासिकीय बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रमुख प्रतिनिधि। **मैक-कुल्लोह, जॉन** (1789-1864) - ब्रिटिश बुर्जुआ अर्थशास्त्री, भोड़े राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रतिनिधि। - *स.*

और उनका चेहरा उनके दिल की आईनादारी करता था। लेकिन जब परिस्थितियाँ संयम की माँग करती थीं, तब वे एक तरह की बच्चों जैसी झेंप प्रदर्शित करते थे, जिसका उनके मित्र अक्सर मज़ा लेते थे।

मार्क्स तो बहुत ही सच्चे आदमी थे, साकार सचाई थे। उन्हें तो देखते ही यह भाँपा जा सकता था कि आप किस के साथ बरत रहे हैं। निरन्तर युद्ध की स्थिति में रहनेवाले हमारे "सभ्य" समाज में कोई हमेशा सच नहीं बोल सकता। वैसा करना दुश्मन के हाथों में खेलना अथवा समाज-बहिष्कार का ख़तरा मोल लेना होगा। लेकिन जहाँ सच बोलना अक्सर अनुपयुक्त हो सकता है, वहाँ झूठ बोलना भी सर्वथा आवश्यक नहीं है। मैं जो कुछ सोचता या महसूस करता हूँ, वह हमेशा नहीं कह सकता, लेकिन मेरे लिए वह कुछ कहना भी तो लाज़िमी नहीं है, जो मैं सोचता या महसूस नहीं करता हूँ। पहली चीज़ बुद्धिमानी है, दूसरी - मक्कारी। मार्क्स कभी मक्कार नहीं थे। वे एक भोले-भाले बच्चे की तरह ही मक्कारी करने में असमर्थ थे। उनकी पत्नी उन्हें अक्सर "मेरा बड़ा बच्चा" कहा करती थीं और मार्क्स को उनसे बेहतर कोई भी नहीं जानता या समझता था, यहाँ तक कि एंगेल्स भी नहीं। सच तो यह है कि जब वे तथाकथित "शिष्ट समाज" में होते थे, जहाँ बाह्याचरण के आधार पर हर चीज़ की बाबत राय क़ायम की जाती है और जहाँ अपनी भावनाओं को कुचलना पड़ता है, हमारे "मूर" बड़े बच्चे जैसा ही व्यवहार करते थे, अभिभूत होकर अथवा झेंप के मारे लाल हो जाते थे।

अभिनेताओं की तरह बँधी-बँधाई भूमिका अदा करनेवालों से उन्हें नफ़रत थी। मुझे अभी तक याद है कि लूई ब्लाँ* के साथ अपनी पहली मुलाक़ात का वर्णन करते हुए वे कितना हँसे थे। तब वे डीन स्ट्रीट पर एक छोटे-से फ़्लैट में ही रह रहे थे, जिसमें दरअसल केवल दो कमरे थे। आगे वाला कमरा बैठकख़ाना और अध्ययनकक्ष था और पीछेवाला बाक़ी सभी के लिए था। लूई ब्लाँ ने अपना मुलाक़ाती कार्ड हेलेन को दिया। उसने उनको आगेवाले कमरे में बैठा दिया और उसी समय मार्क्स पीछे के कमरे में जल्दी-जल्दी कपड़े बदल रहे थे। दोनों कमरों के बीच का दरवाज़ा कुछ खुला छूट गया था, जिससे मार्क्स को एक मज़ेदार दृश्य देखने को मिला। "महान" इतिहासवेत्ता और राजनीतिज्ञ बहुत ही नाटे थे, किसी आठ साल के बच्चे जितने ही। लेकिन वे बहुत ही आडम्बरी व्यक्ति थे। उन्होंने उस सर्वहारा बैठकख़ाने पर चारों तरफ नज़र दौड़ायी, जिसके एक कोने में उन्हें एक बहुत

---

* **ब्लाँ, लूई** (1811-1882) - फ़्रांसीसी निम्न बुर्जुआ समाजवादी, 1848 की क्रान्ति के दौरान अस्थायी सरकार के सदस्य। - *स.*

मामूली-सा आईना दिखायी पड़ा। वे फ़ौरन उसके सामने मुद्रा बनाकर खड़े हो गये, अपने बौने क़द को यथासम्भव खींच-तानकर - उनकी जैसी ऊँची एड़ियाँ मैंने किसी की नहीं देखीं - आह्लादित होकर अपना रूप निरखा और वसन्ती ख़रगोश की तरह अपने को सँवारते-निखारते हुए प्रभावशाली दीखने की चेष्टा की। श्रीमती मार्क्स भी उस हास्योत्पादक दृश्य को देख रही थीं। उन्हें होंठ दबाकर अपनी हँसी रोकनी पड़ी। मार्क्स जब कपड़े पहन चुके, तो अपनी आमद की सूचना देने के लिए वे ज़ोर से खाँसे और उन आडम्बरप्रिय जन-प्रवक्ता ने आईने के सामने से हटकर उनको नमस्कार किया। निश्चय ही अभिनय करने और आडम्बर की मुद्रा बनाने से मार्क्स के सामने दाल नहीं गलती थी और "बौने लूई" ने, जैसाकि उन्हें पेरिस के मज़दूर लूई बोनापार्ट से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए पुकारते थे, झटपट यथासम्भव स्वाभाविक रुख़ अपना लिया...

6 काम के दौरान मार्क्स

किसी ने कहा है कि "प्रतिभा अध्यवसाय है" और यह बात अगर पूर्णत: नहीं, तो भी बहुत हद तक सही है।

अत्यधिक ओज तथा असाधारण कार्यक्षमता के बिना प्रतिभा हो ही नहीं सकती। प्रतिभा अगर उक्त दोनों गुणों में से किसी से भी रहित है, तो वह केवल साबुन का सुन्दर बुलबुला है अथवा कहीं चन्द्रलोक में स्थित भावी निधि द्वारा समर्थित हुण्डी है। जहाँ ओज और कार्यक्षमता औसत से अधिक होती है, प्रतिभा वहीं होती है। मैं अक्सर ऐसे लोगों से मिला हूँ जो अपनेआप को प्रतिभाशाली समझते थे और जिन्हें कभी-कभी दूसरे भी प्रतिभाशाली मान लेते थे, लेकिन जिनमें कार्यक्षमता का अभाव था। वस्तुत: वे महज़ लच्छेदार बातें करने और अपना ढिंढोरा पीटने की कला में पटु निकम्मे लोग थे। मेरी जान-पहचान के वास्तविक महत्त्व रखनेवाले सभी लोग कठोर अध्यवसायी रहे हैं। मार्क्स के बारे में तो यह बात सोलह आने सही है। वे बहुत ही मेहनती थे। चूँकि दिन को काम करने में, विशेषत: उनके उत्प्रवासी जीवन के पहले दौर में, अक्सर बाधा पड़ती थी, इसलिए उन्होंने रात में काम करना शुरू कर दिया। किसी बैठक या सभा से बहुत देर में घर लौटने पर चन्द घण्टों तक काम करना उनके लिए मामूली था और वे चन्द घण्टे अधिकाधिक लम्बे होते गये, यहाँ तक कि अन्त में वे सारी रात काम करने लगे और सुबह होने पर सोने जाते। उनकी पत्नी ने इस सम्बन्ध में उन्हें कितनी ही बार सख़्ती से झिड़का, लेकिन उन्होंने

प्रेस से बाहर आने पर न्यू *राइनिश ज़ाइटुंग* को देखते हुए मार्क्स

हँसकर जवाब दिया कि यह तो मेरे स्वभाव के अनुरूप है...

बेहद मज़बूत काठी के बावजूद, पचासा ख़त्म होते न होते मार्क्स को विभिन्न प्रकार की शारीरिक व्याधियों की शिकायत शुरू हो गयी और उन्हें डॉक्टर के पास जाना पड़ा। फल यह हुआ कि उन्हें रात को काम करने की सख़्त मनाही कर दी गयी और अधिक व्यायाम करने – टहलने और घुड़सवारी करने – का निर्देश किया गया। उस समय हम मार्क्स के साथ लन्दन के उपान्त में, मुख्यतः पहाड़ी उत्तर में, बहुत टहले। मार्क्स शीघ्र ही निरोग हो गये। वास्तव में उनकी काया तो मानो घोर श्रम के लिए ही बनी थी।

लेकिन उन्होंने अपने को निरोगी महसूस करना शुरू ही किया था कि धीरे-धीरे फिर से रात को काम करने की आदत बना ली। फिर से संकट आने पर ही वे अधिक उचित जीवनचर्या अपनाने के लिए बाध्य हुए, हालाँकि सिर्फ़ तभी तक के लिए, जब तक उन्होंने उसे सर्वथा अनिवार्य समझा। रोग के दौरे अधिकाधिक ज़ोरदार होते गये। जिगर की बीमारी शुरू हो गयी और घातक रसौलियाँ पैदा हो गयीं। धीरे-धीरे उनकी लौह काया जर्जर हो गयी। मैं इस बात का क़ायल हूँ – और जिन डॉक्टरों ने उनके जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी चिकित्सा की थी उनकी भी यही राय थी – कि अगर मार्क्स स्वाभाविक जीवन बिताने का निश्चय कर लेते, यानी ऐसा जीवन बिताते जो उनकी कायिक माँग के, अथवा कहें कि स्वास्थ्य के नियमों की माँग के, अनुकूल होता, तो वे आज भी जीते होते। जीवन के आख़िरी बरसों में ही जाकर, जबकि बहुत देर हो चुकी थी, उन्होंने रात में काम करना बन्द किया। हाँ, उसकी जगह वे दिन में अधिक काम करने लगे।

जब कभी ज़रा भी सम्भव होता, वे तभी काम करने लगते। वे टहलने के समय भी अपनी नोटबुक साथ रखते और उसमें अपनी टिप्पणियाँ लिखते रहते थे। उनका काम कभी सतही नहीं होता था। वैसे तो काम तरह-तरह से किया जा सकता है, लेकिन वे हमेशा गहराई में जाते थे, पूरी छानबीन करते थे। उनकी बेटी एल्योनोरा ने मुझे एक इतिहास-सारिका दी, जिसे उन्होंने अपने लिए बनाया था, ताकि उसे किसी गौण उल्लेख़ के लिए इस्तेमाल कर सकें। लेकिन सच तो यह है कि मार्क्स के लिए कुछ भी गौण नहीं था और जो सारिका उन्होंने अपने वक़्ती इस्तेमाल के लिए तैयार की थी, उसके लिए सामग्री इतने अध्यवसाय तथा ध्यानपूर्वक संग्रह की गयी थी, मानो उसे छपवाना हो।

काम करने में मार्क्स का धैर्य देखकर तो मैं अक्सर आश्चर्यचकित रह

जाता था। वे थकान का नाम ही नहीं जानते थे। थककर चूर हो जाने पर भी वे कमज़ोरी के कोई लक्षण नहीं प्रदर्शित करते थे।

अगर आदमी का मूल्य उसके काम के अनुसार आँका जाये जिस प्रकार चीज़ों का मूल्य उनमें लगे श्रम के अनुसार आँका जाता है, तो उस दृष्टि से भी मार्क्स का मूल्य इतना अधिक है कि महज़ गिने-चुने प्रकाण्ड मस्तिष्क ही उनकी तुलना में रखे जा सकते हैं।

लेकिन पूँजीवादी समाज ने इतने अधिक काम के बदले में मार्क्स को क्या दिया?

मार्क्स ने *पूँजी* पर 40 साल काम किया और वह भी ऐसा काम जिसे केवल मार्क्स ही कर सकते थे। मेरा यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मार्क्स को हमारे युग की दो में से एक (दूसरी डार्विन की थी) महानतम वैज्ञानिक कृति के लिए जितना पारिश्रमिक मिला, जर्मनी में कम से कम उजरत पानेवाले रोज़ीनादार को भी 40 साल में उससे अधिक मजूरी मिली होगी।

विज्ञान का विक्रेय मूल्य नहीं है और पूँजीवादी समाज से यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वह अपनी ही मौत की सज़ा क़लमबन्द करने का समुचित दाम अदा करे...

7 डीन स्ट्रीट वाले मकान में

1850 की गर्मियों से लेकर 1862 के शुरू तक, जब मैं जर्मनी वापस आ गया था, मैं मार्क्स के घर प्रायः रोज़ जाता था और बरसों वहाँ पूरे के पूरे दिन गुज़ारता रहा। मैं तो परिवार का मानो एक अंग बन गया था...

मेटलैण्ड पार्क रोड के कॉटेज में रहने के लिए आने से पहले मार्क्स सोहो स्क्वेयर की सुनसान डीन स्ट्रीट पर एक सादे-से मकान में रहते थे। जहाँ मुसाफ़िरों, आते-जाते लोगों और उत्प्रवासियों का जमघट रहता था और साधारण, महत्त्वपूर्ण तथा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लोग भी आ टपकते थे। इसके अलावा वह मकान ऐसे साथियों के मिलने-जुलने का स्थायी केन्द्र बन गया था, जो लन्दन में रहते तो थे, लेकिन जिनके आवास में सदा कोई न कोई अड़चन लगी रहती थी। बात यह थी कि लन्दन में स्थिर रूप से बस पाना बहुत कठिन था। भूख अधिकतर उत्प्रवासियों को प्रान्तों में, अथवा अमेरिका भगा देती थी और कुछ बेचारों का तो काम ही तमाम करके लन्दन के किसी क़ब्रिस्तान भेज देती थी, जहाँ उन्हें आवास के लिए न सही, चिर विश्राम के लिए स्थान मिल जाता था। लेकिन मैं जैसे-तैसे आज़माइश को झेल गया और

वफ़ादार लेसनर और लौख़नर* को छोड़कर, जो बहरहाल डीन स्ट्रीट पर यदा-कदा ही आते थे, हमारे लन्दनी "समुदाय" में से केवल मैं ही एक ऐसा था, जो एक छोटे से वक़्फ़े के अलावा, जिसकी मैं और कहीं चर्चा करूँगा, उत्प्रवास की पूरी मुद्दतभर "मूर" के घर, परिवार के एक अंग की तरह, आता-जाता रहा। इसलिए मैं बहुतेरी ऐसी बातें भी देख और जान सका, जो दूसरों की नज़र से चूक गयीं।

8 उत्प्रवासियों के कुचक्र

मेरे लन्दन जाने से पहले के मेरे दोस्त और साथी मार्क्स के प्रति मेरी अनुरक्ति के कारण अक्सर मेरा मज़ाक बनाते थे। हाल ही में उस ज़माने का एक पत्र मेरे हाथ लग गया। यह पत्र बावेर ने मुझे लिखा था, जो अधिकतम कार्यकुशल बादेनी स्वयंसेवकों** में से थे और जिनकी चन्द साल पहले मिल्वाकी (संयुक्त राज्य अमेरिका) में मृत्यु हो गयी है। वे वहाँ पर अपने ही द्वारा संस्थापित एक रैडिकल-जनवादी अख़बार का सम्पादन कर रहे थे। अन्य पर्याप्त साधनसम्पन्न उत्प्रवासियों की तरह वे भी लन्दन में थोड़े अरसे तक रहकर अमेरिका चले गये थे, जहाँ शीघ्र ही अपनी योग्यता के अनुकूल अख़बारी काम में लग गये थे।

लन्दन में रहनेवाले उत्प्रवासियों के लिए वह सबसे कठिन दौर था और बावेर मुझे अपने पास खींच लेना चाहते थे। वे सम्पादक के रूप में उचित वेतनवाले काम का आश्वासन देते हुए मुझे आने के लिए कई बार पत्र लिख चुके थे। उन दिनों मेरे पास एक जून की रोटी तक नहीं थी और 50 डॉलर साप्ताहिक का आश्वासन मेरे लिए बहुत ही आकर्षक चारा था। लेकिन मैंने उस लोभ का संवरण किया। मैं समरक्षेत्र से आवश्यकता से अधिक दूर नहीं हटना चाहता था, क्योंकि मैं जानता था कि 99 प्रतिशत सम्भावना इसी बात की है कि जो भी महासागर के पार गया, वह यूरोप के लिए खो गया।

अन्त में बावेर ने आख़िरी हथियार का सहारा लेते हुए मेरे अहंभाव को उकसाने की कोशिश की। एक पत्र में, जो मेरे काग़ज़ों में अब भी मौजूद है,

---

* **लेसनर, फ़्रेडरिक** (1825-1910) - अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्त्ता, पेशे से दर्ज़ी, मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र तथा सहकर्मी। लौख़नर, गेओर्ग (जन्म 1824 के लगभग - मृत्यु की तिथि अज्ञात) - जर्मन मज़दूर आन्दोलन के नेता, कम्युनिस्ट लीग तथा पहले इण्टरनेशनल के सदस्य; पेशे से बढई; मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र तथा समर्थक। - *स.*

** 1849 के बादेन-फ़ाल्ट्स विद्रोह में भाग लेनेवाले कार्ल फ़्रेडरिक बावेर से अभिप्राय। - *स.*

उन्होंने लिखा :

"...यहाँ तुम आज़ाद आदमी होओगे और स्वतन्त्र रूप से अपनी क्षमता प्रदर्शित कर सकोगे। लेकिन वहाँ तुम क्या हो? इधर-उधर फेंकी जाने वाली महज़ एक गेंद, एक गधा, जिसका इस्तेमाल भार ढोने के लिए किया जाता है और जिसका पीठ पीछे मज़ाक़ उड़ाया जाता है। तुम्हारे स्वर्ग-राज्य में क्या स्थिति है? उच्चतम सिंहासन पर सर्वज्ञाता, सर्वबुद्धिमान, दलाई लामा - मार्क्स आसीन हैं। उसके बाद बहुत-सी जगह ख़ाली है और तब आते हैं एंगेल्स। उसके बाद फिर से बहुत बड़ी जगह ख़ाली है। तब वोल्फ़ आते हैं और उसके बाद फिर बहुत-सी जगह ख़ाली रह जाती है। तब शायद आता है 'भावुक गर्दभ' लीबनेख़्त..."

मैंने उत्तर में लिखा कि इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है कि जो लोग मुझसे अधिक सम्मान के अधिकारी हैं, उनके बाद ही मेरा स्थान हो, कि ऐसे आदमियों की सोहबत की अपेक्षा, जिन्हें मुझे नीची निगाह से देखना पड़े, जैसेकि बावेर के सभी "महापुरुष", मैं ऐसों की सोहबत में रहना अधिक बेहतर समझता हूँ, जिनसे कुछ सीख सकूँ और जिन्हें ऊँची निगाह से देखना पड़े।

फलत: मैं जहाँ का तहाँ बना रहा और सीखता-पढ़ता रहा। लेकिन हमारे हलक़े से बाहर के उत्प्रवासी मार्क्स और हमारे "समुदाय" के बारे में उक्त राय ही रखते थे। हम स्वयं को उन लोगों से इतना दूर रखते थे कि वे कल्पना के घोड़े दौड़ाने को विवश हो जाते थे, और उन्होंने मनगढ़न्तों का एक अम्बार लगा लिया था। लेकिन हमने इसकी कोई परवाह नहीं की।

9 मार्क्स के घर मुलाक़ातें

मेरे विकास पर मार्क्स की पत्नी का प्राय: उतना ही प्रभाव पड़ा, जितना स्वयं मार्क्स का। मैं अभी तीन साल का ही था कि मेरी माँ मर गयी थीं और ख़ासी कठिन परिस्थितियों में मेरा पालन-पोषण हुआ था... मार्क्स की पत्नी में मुझे एक ऐसी सुघड़, उदार और समझदार महिला मिलीं, जो हालात द्वारा टेम्स तट पर ला पटके गये मुझ उपेक्षित और मित्रहीन स्वयंसेवक के लिए माँ और बहन बन गयीं। मुझे मानना पड़ेगा कि मार्क्स परिवार के साथ मेरे परिचय ने मुझे उत्प्रवास की विपत्ति में विनष्ट होने से बचा लिया...

मार्क्स के घर पर और उनकी सोहबत में जिन लोगों के साथ उस दौर में मेरी मुलाक़ातें हुईं, उन सबकी सरसरी रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए भी यहाँ न तो पर्याप्त समय है और न स्थान। उन जर्मन तथा अन्य उत्प्रवासियों के

अतिरिक्त, जो किसी उसूली विरोध के कारण हमसे अलग नहीं थे, मैं ब्रिटिश मज़दूर आन्दोलन के नेताओं से भी मिला – चार्टिज़्म* के दो अन्तिम महान प्रतिनिधि – स्पार्टासिस्ट जॉर्ज जूलियन हॉर्नी और व्याख्यान-पटु जन-प्रवक्ता तथा ओजस्वी पत्रकार अर्नेस्ट जोन्स; फ्रॉस्ट, जो "शारीरिक शक्ति के पक्षधरों"** के एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि थे और जिन्हें चार्टिस्ट विद्रोह के नेता होने के कारण आजीवन निर्वासन-दण्ड दिया गया था और बाद में क्षमित होकर छठी दशाब्दी में ब्रिटेन लौटे थे, तथा समाजवाद के वयोवृद्ध पितामह, वैज्ञानिक समाजवाद के पूर्व-पुरुषों में सर्वाधिक परिग्राही, गूढ़दर्शी तथा व्यवहार-प्रिय रॉबर्ट ओवेन इनमें शामिल थे। हमने उनकी 80वीं सालगिरह के समारोह में भाग लिया और मुझे अक्सर उनके घर जाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था...

मेरे आने के थोड़े ही समय बाद एक फ़्रांसीसी मज़दूर लन्दन आए। उन्होंने न केवल फ़्रांसीसी, बल्कि हम सभी उत्प्रवासियों और हमारी "छायाओं", यानी अन्तरराष्ट्रीय पुलिस, में भी ख़ासी दिलचस्पी पैदा कर दी। उनका नाम बार्थेलेमी था। पेरिस की जेल से चालाकी और साहस के साथ उनके फ़रार हो जाने की बात हमने अख़बारों में पढ़ी थी। औसत से कुछ ऊँचा क़द, पुष्ट और गठीला बदन, आबनूसी घुँघराले बाल और तेजोद्दीप्त काली आँखें – वे विशिष्ट दक्षिणी फ़्रांसीसी और दृढ़-निश्चयता के अवतार थे।

उनका गर्वोन्नत व्यक्तित्व दन्त-कथाओं के उजले ताने-बाने से गुँथा-बुना था। उन्हें काले पानी की सज़ा दी गयी थी और उनके कन्धे पर अमिट दाग़ अंकित था। वे अभी केवल सत्रह साल के ही थे कि उन्होंने 1839 में ब्लांकी-बार्बे विद्रोह*** के दौरान एक पुलिसवाले की हत्या कर दी थी और एक दण्ड-बस्ती में भेज दिये गये थे। 1848 की फ़रवरी क्रान्ति के दौरान आम रिहाई में मुक्त होकर पेरिस लौटे थे और सर्वहारा वर्ग के सभी आन्दोलनों तथा प्रदर्शनों में भाग ले चुके थे। वे जून की लड़ाई**** में लड़े और

---

* ब्रिटेन में मज़दूर वर्ग का पहला आम क्रान्तिकारी आन्दोलन (19वीं शताब्दी की चौथी-पाँचवीं दशाब्दी)। – *स.*

** चार्टिज़्म में वामपन्थी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, जो आन्दोलन को शान्तिमय हलचल की सीमाओं में बाँध रखने के आकांक्षी "नैतिक शक्ति के पक्षधरों" के विपरीत शारीरिक बल-प्रयोग के पक्ष में थी। – *स.*

*** पेरिस में मई 1839 में, ब्लांकीपन्थियों की क्रान्तिकारी गुप्त 'सीज़न्स ऑफ़ दी इयर सोसायटी' द्वारा किया गया विद्रोह। – *स.*

**** जून 1848 में पेरिस का सर्वहारा विद्रोह। – *स.*

अन्तिम मोर्चाबन्दियों में से एक पर लड़ते हुए पकड़ लिये गये। सौभाग्यवश पहले कई दिनों में उन्हें कोई पहचान नहीं पाया, वरना अनेक अन्य लोगों की भाँति उन्हें भी "सरकारी अदालती कार्यवाही" के बाद गोली मार दी गयी होती। जब उन्हें फ़ौजी अदालत के सामने पेश किया गया, तो ख़ून-ख़राबे की पहली लहर गुज़र चुकी थी और उन्हें महज़ "ठण्डी फ़ाँसी" की, यानी कायेन्ने में आजीवन जलावतनी की सज़ा दी गयी। किसी कारणवश उनका मामला देर तक खिंच गया और जून 1850 में वे अभी जेल में ही थे और उस स्थान पर जलावतन किये जाने से ठीक पहले, जहाँ मिर्च उगती है और इन्सान मरते हैं, वे फ़रार हो जाने में कामयाब हो गये। स्वभावत: वे लन्दन पहुँच गये, जहाँ हमारे निकट सम्पर्क में आये और मार्क्स के यहाँ अक्सर आते थे...

मैं अक्सर उनसे दो-दो हाथ करता था, बिल्कुल शाब्दिक अर्थ में। बात यह है कि फ़्रांसीसी उत्प्रवासियों ने ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट पर राथबोन प्लेस में एक "तलवार-मण्डप" बना रखा था, जहाँ तेग़ों-तलवारों की पटेबाज़ी और पिस्तौली निशानेबाज़ी का अभ्यास किया जा सकता था। समय-समय पर मार्क्स भी वहाँ जाते थे और फ़्रांसीसियों के साथ डटकर लोहा लेते थे। वे अपनी कौशलहीनता की कमी को उग्रता द्वारा पूरा करने की चेष्टा करते और कभी-कभी धैर्यहीनों पर हावी हो जाते। जैसाकि सर्वविदित है, फ़्रांसीसी लोग तलवार का उपयोग प्रहार और चकमा देने के लिए भी करते हैं और यह चीज़ शुरू में जर्मनों को हकबका देती है, लेकिन शीघ्र ही आदमी इसका आदी हो जाता है। बार्थेलेमी अच्छे पटेबाज़ थे और वे अक्सर पिस्तौल से चाँदमारी का भी अभ्यास करते थे, जिससे वे बहुत जल्दी अच्छे निशानेबाज़ बन गये। लेकिन वे शीघ्र ही विलिख़* के गुट में जा मिले और मार्क्स के सरगर्म दुश्मन बन गये।

विलिख़ के गुट के साथ मतभेद कटुतर हो गये और एक शाम को विलिख़ ने मार्क्स को द्वन्द्वयुद्ध की चुनौती दे दी। मार्क्स ने इस नेक प्रस्ताव को यथोचित रूप में ग्रहण किया, जिससे छोटी प्रशियाई अफ़सरी की बू आ रही थी, लेकिन तुनकमिज़ाज नौजवान कोनराद श्राम्म** ने अपनी ओर से विलिख़ का अपमान कर दिया। इसलिए विलिख़ ने उसे अपनी

---

* कम्युनिस्ट लीग में 1850 में फूट पड़ गयी थी। विलिख़ और शैप्पर उस "वामपन्थी" दुस्साहसवादी दल के अगुआ थे, जिसे लीग से निकाल दिया गया था। - *स.*

** श्राम्म, कोनराद (1822-1858) - जर्मन क्रान्तिकारी, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, मार्क्स और एंगेल्स के मित्र। - *स.*

विद्यार्थी-संहिता के अनुसार द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा। द्वन्द्व-युद्ध बेल्जियम के समुद्र तट पर होना तय पाया और उसके लिए हथियार चुनी गयी - पिस्तौल। श्राम्म ने पहले कभी पिस्तौल को छुआ तक नहीं था और उधर विलिख़ का बीस क़दम की दूरी से पान के एक्के का निशाना कभी नहीं चूकता था। बार्थेलेमी उनके परिचर बने। हमें अपने दिलेर सूरमा श्राम्म की बड़ी चिन्ता थी।

द्वन्द्वयुद्ध के लिए निर्धारित दिन गुज़र गया और हम एक-एक मिनट गिनते रहे। दूसरी शाम को, जब मार्क्स घर पर नहीं थे और केवल उनकी पत्नी और हेलेन घर पर थीं, दरवाज़ा खुला और बार्थेलेमी दाख़िल हुए। उन्होंने तनिक सिर झुकाकर अभिवादन किया और समाचार के लिए व्यग्र प्रश्नों के उत्तर में उदास स्वर में उत्तर दिया : "Schramm a uneballe dans la tete" - श्राम्म के सिर में गोली लगी है! इसके बाद उन्होंने फिर तनिक झुककर अभिवादन किया, घूमे और चले गये। श्रीमती मार्क्स की भयाकुलता का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है... वे तो बेहोश-सी हो गयीं। एक घण्टे बाद उन्होंने उक्त बुरा समाचार हमें सुनाया। हम स्वभावत: श्राम्म के जीवन के प्रति निराश हो गये। दूसरे दिन ठीक उस समय, जब हम उनके बारे में दुखपूर्वक बातें कर रहे थे, दरवाज़ा खुला और वही व्यक्ति, जिसे हम मरा समझ रहे थे, अन्दर आया। उसके सिर पर पट्टी बँधी थी, लेकिन वह ख़ुशी से हँस रहा था। उसने हमें बताया कि गोली सिर को छीलती हुई ऊपर ही ऊपर गुज़र गयी थी और मैं बेहोश हो गया था। होश आने पर मैंने अपने को परिचर और डॉक्टर के साथ समुद्र-तट पर पाया। विलिख़ और बार्थेलेमी ओस्टेण्ड से मिलनेवाले पहले जहाज़ से लौट गये थे। श्राम्म दूसरे जहाज़ से लौटा था...

10 मार्क्स और बच्चे

हर हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ व्यक्ति की तरह, मार्क्स भी बच्चों को बेहद प्यार करते थे। वे अपने बच्चों के साथ घण्टों बच्चा बने रह सकनेवाले अतिअनुरक्त पिता ही नहीं, बल्कि दूसरे बच्चों की ओर, विशेषत: राह चलते मिलनेवाले असहाय और दुर्भाग्यग्रस्त बच्चों की ओर भी चुम्बक की तरह खिंचते थे। जब हम ग़रीब बस्तियों को देखने जाते, तो सैकड़ों बार ऐसा होता कि वे हमें छोड़कर किसी दहलीज़ की चौखट पर चिथड़े पहने बैठे किसी बच्चे के पास जाकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगते और उसके हाथ में एकाध पेनी का सिक्का थमा देते। वे भिखारियों का विश्वास नहीं करते थे,

क्योंकि लन्दन में भीख माँगना एक बाक़ायदा रोज़गार बन गया था और वह भी लाभकर रोज़गार, जो बेशक ताँबे के टुकड़े बटोर कर ही चलता था। फलतः वे भिखमंगे-भिखमंगिनें, जिन्हें शुरू के दिनों में जेब में कुछ होने पर मार्क्स कभी भीख देने से इनकार नहीं करते थे, उन्हें बहुत दिनों तक धोखा नहीं दे सके। अगर उनमें से कोई बीमारी अथवा ज़रूरतमन्दी का ढोंग रचकर मक्कारी से उन्हें करुणा-विगलित करने की चेष्टा करता, तो उन्हें गुस्सा आता था, क्योंकि वे मानवीय दया से अनुचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति को ख़ासतौर पर बड़ी नीचता और ग़रीबों को लूटने के समान समझते थे। लेकिन अगर रोता हुआ बच्चा लिए कोई भिखारी या भिखारिन उनके पास आती, जिसके चेहरे पर बेशक बिल्कुल साफ़ मक्कारी झलकती होती, तो मार्क्स बच्चे की अनुनय भरी आँखों के सामने बेबस हो जाते थे।

शारीरिक दुर्बलता और असहायता से मार्क्स सदा दया-द्रवित हो जाते तथा उनमें सहानुभूति का उद्रेक होता था... अपनी पत्नी को पीटनेवाले पुरुष को - और उस समय लन्दन में यह आम प्रचलन था - कोड़े लगवाकर अधमरा कर देने से मार्क्स को बहुत ख़ुशी होती। ऐसे हालात में उनकी उद्वेलनशील प्रकृति उन्हें और हमें अक्सर कठिनाई में डाल देती थी।

एक शाम को हम मार्क्स के साथ बस में बैठकर हैम्पस्टेड रोड जा रहे थे। रास्ते में एक मदिरालय के पासवाले स्टॉप पर जब हमारी बस रुकी, तो वहाँ हंगामा मचा हुआ था और एक औरत चीख़ रही थी : "मार डाला! मार डाला!" मार्क्स पलक झपकते ही सबसे नीचे पहुँच गये और मैं भी उनके पीछे हो लिया। मैं उन्हें रोकने की कोशिश कर रहा था, लेकिन वह तो छूटी हुई गोली को हाथों से थामने की कोशिश के समान थी। आन की आन में हम हंगामे के बीच में थे और हमारे पीछे लोगों की रेलमपेल हो रही थी। "आख़िर मामला क्या है?" हमें जल्दी ही इसका पता चल गया। कोई मदहोश औरत अपने पति से लड़ रही थी। वह उसे घर ले जाना चाहता था, पर औरत प्रतिरोध कर रही थी और दीवानावार चीख़ रही थी। हमने समझ लिया कि हमारे हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन लड़नेवाले पति-पत्नी भी यह समझ गये और झटपट सुलह करके हमारे ख़िलाफ़ पिल पड़े। हमारे गिर्द भीड़ बढ़ती गयी, धकमपेल करती हुई नज़दीक आती गयी और उसने "लानतज़दा विदेशियों" के प्रति ख़तरनाक रवैया अपना लिया। उस औरत ने ख़ासतौर से मार्क्स पर हमला किया और उनकी बढ़िया काली दाढ़ी को अपने क्रोध का निशाना बनाया। मैंने उस तूफ़ान को शान्त करने की निष्फल कोशिश की और केवल दो हट्टे-कट्टे

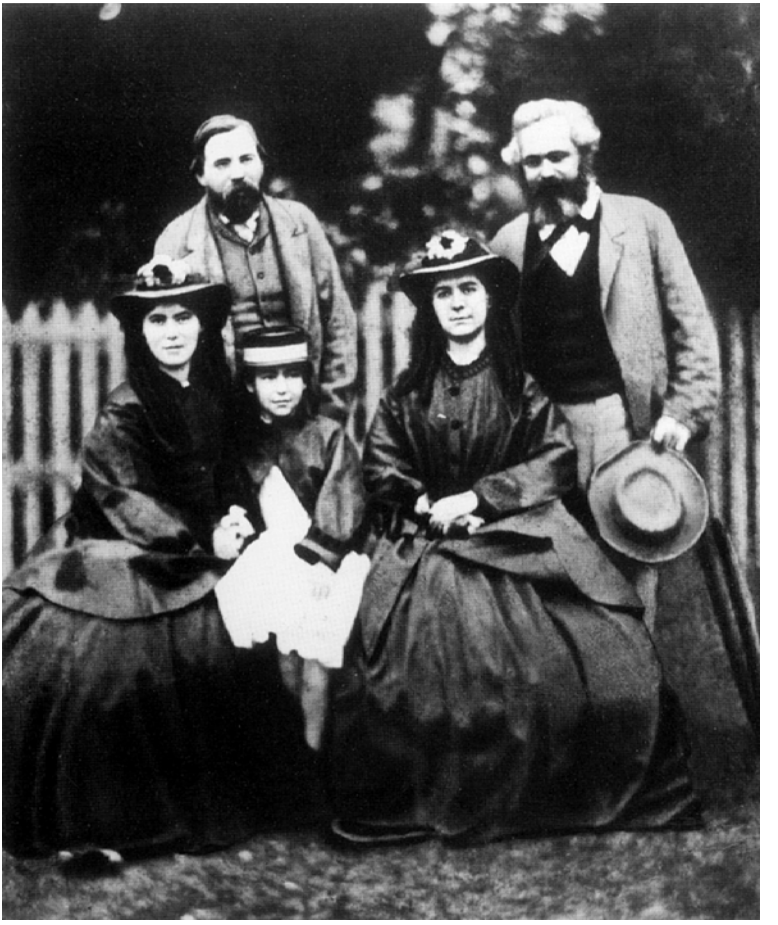

एंगेल्स और अपनी पुत्रियों - जेनी, लॉरा और एलियनोर के साथ
कार्ल मार्क्स

पुलिसवालों की आमद ही हमें अपने उपकारी हस्तक्षेप का महँगा मोल चुकाने से बचा सकी। घर लौटने के लिए एक बस में सही-सलामत सवार हो जाने पर हमें ख़ुशी हुई। बाद में मार्क्स ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने के सम्बन्ध में अधिक सतर्क रहने लगे...

मार्क्स की उदात्त स्नेहशीलता और सादगी को समझने के लिए उन्हें अपने बच्चों के बीच देखना ज़रूरी था। अवकाश की घड़ियों में अथवा टहलने के दौरान वे उनके साथ दौड़ते थे और उनके अधिक से अधिक उल्लासमय तथा कल्लोलपूर्ण खेलों में हिस्सा लेते थे। वे बच्चों के बीच बिल्कुल बच्चा बन जाते थे। कभी-कभी हम हैम्पस्टेड की वनस्थली में "घुड़सवार" का खेल खेलते थे। मैं किसी एक बेटी को कन्धों पर चढ़ा लेता और मार्क्स दूसरी को और उसके बाद दौड़ें शुरू हो जातीं या घुड़सवार आपस में भिड़ने लगते। लड़कियाँ बिल्कुल लड़कों की तरह उत्कट थीं और छोटी-मोटी चोट से कभी नहीं रोती थीं।

दोनों लड़कियों में से बड़ी जेनी तो अपने पिता की बिल्कुल प्रतिमूर्ति थी। वही काली-काली आँखें, वही पेशानी। वह कभी-कभी पाइथिया बन जाती और उसमें पाइथिया के समान कोई "रूह" आ जाती। उसकी आँखें चमकने लगतीं, उनसे मानो चिंगारियाँ निकलने लगतीं और वह धाराप्रवाह भाषण देने लगती, जिसमें अक्सर अद्‌भुत कल्पना-विलास का समावेश होता। एक दिन उसे हैम्पस्टेड की वनस्थली से घर लौटते हुए इसी ढंग का "दौरा" आ गया और वह सितारों पर जीव के अस्तित्व की बातें करने लगी। उसकी वर्णना ने कविता का रूप ग्रहण कर लिया। श्रीमती मार्क्स के कई बच्चे चूँकि बचपन में ही मर गये थे, इसलिए वे मातृसुलभ चिन्ता के साथ बोलीं : "इसकी उम्र के बच्चे ऐसी बातें नहीं करते। इसकी अकाल-प्रौढ़ता बुरे स्वास्थ्य की निशानी है।" लेकिन "मूर" ने उन्हें झिड़का और मैंने उनकी "पाइथिया" की ओर संकेत किया, जो अपने आगमज्ञानी के नाटक को समाप्त कर उल्लासपूर्वक हँसते हुए उछलकूद रही थी और स्वास्थ्य की साक्षात् प्रतिमा लग रही थी...

मार्क्स के दोनों बेटे छुटपन में ही मर गये थे, लन्दन में पैदा होनेवाला तो बहुत ही छोटी उम्र में और ब्रसेल्स में जन्म लेनेवाला लम्बी बीमारी के बाद। दूसरे की मृत्यु मार्क्स के लिए भयानक चोट थी। मुझे उस आशारहित बीमारी के ग़मगीन हफ़्ते अब भी याद हैं। लड़के का नाम एक मामा के नाम पर एडगर रखा गया था, लेकिन उसे पुकारा "मुश"* जाता था। वह अत्यन्त

---

* फ़्रांसीसी में "मुश" ("Mouche") का अर्थ है - मक्खी। - *स.*

मेधावी, किन्तु बचपन से ही रोगी था, बिल्कुल सन्ताप-शिशु। सुन्दर आँखें, होनहार मस्तक, जो उसके दुर्बल शरीर के लिए अत्यन्त भारी प्रतीत होता था। बेचारे "मुश" को अगर देहात में अथवा समुद्र-तट पर शान्त वातावरण मिलता तथा उसकी निरन्तर अच्छी देखभाल होती, तो शायद वह जीता रह जाता। लेकिन उत्प्रवास के दौरान जगह-जगह मारे-मारे फिरने और लन्दन के जीवन की कठोरताओं में कोमलतम पैतृक स्नेह तथा मातृक सेवा भी दुर्बल पौधे को जीवन के लिए संघर्ष की आवश्यक शक्ति नहीं प्रदान कर सकती थी और "मुश" की मृत्यु हो गयी...

मैं वह दृश्य कभी नहीं भूल सकता : मृत बच्चे के ऊपर झुकी माँ मौन विलाप कर रही थी, पास ही खड़ी हेलेन सिसकियाँ भर रही थी और आश्वासन के किसी भी प्रयत्न पर मार्क्स भयानक रूप से उद्विग्न हो उठते थे; दोनों लड़कियाँ माँ से चिपटकर मौन रुदन कर रही थीं तथा शोकमग्न माँ तड़प-तड़पकर अपनी बच्चियों को ऐसे अपने साथ सटा लेती थीं, मानो पुत्रों को छीन ले जानेवाली मौत से उनकी रक्षा कर रही हों।

दो दिन बाद "मुश" को दफ़नाया गया। लेसनर, फ़ैन्दर*, लौख़नर, कोनराद श्राम्म, रेड वोल्फ़** और मैं मौजूद थे। मैं मार्क्स के साथ बग्घी में गया था। वे हाथों में सिर थामे गुमसुम बैठे रहे...

बाद में तुस्सी पैदा हुई। नन्ही-सी प्रफुल्ल सर्जना, गेंद जैसी गोल-मटोल, दूधिया और गुलाबी। पहले उसे बच्चागाड़ी में घुमाया जाता रहा, बाद में वह गोदी चढ़ी फिरती रही और फिर अपने नन्हे-नन्हे पैरों से ठुमकने लगी। जब मैं जर्मनी वापस लौटा, तो वह छह साल की थी, मेरी सबसे बड़ी बेटी की आधी उम्र की, और जो पिछले दो सालों से हैम्पस्टेड की वनस्थली में मार्क्स परिवार की रविवारी सैर के दौरान उसके साथ जाती थी।

मार्क्स के लिए बच्चों की संगत विश्राम और ताज़गी का स्रोत थी। वे उसके बिना रह ही नहीं सकते थे। उनके अपने बच्चों के बड़े हो जाने पर उनका स्थान नातियों-नातिनों ने ले लिया। जेनी, जिसने आठवीं दशाब्दी के शुरू में कम्यून में भाग लेनेवाले एक उत्प्रवासी, लांगे से शादी कर ली थी, ने मार्क्स को कई नटखट नाती दिये। जॉन अथवा जॉनी, जो सबसे बड़ा और

---

* **फ़ैन्दर, कार्ल** (लगभग 1818-1876) - जर्मन मज़दूर आन्दोलन के कार्यकर्त्ता, कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति तथा पहले इण्टरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य; पेशे से चित्रकार; मार्क्स और एंगेल्स के हिमायती। - *स.*

** **रेड वोल्फ़** - फ़र्दीनान्द वोल्फ़ का उपनाम, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य तथा 1848-1849 में न्यू राइनिश ज़ाइटुंग के एक सम्पादक। - *स.*

सबसे अधिक नटखट था, अपने नाना का चहेता था। वह उन्हें जैसे चाहता अपने इशारों पर नचा सकता था और यह बात वह जानता भी था।

एक दिन का क़िस्सा मुझे याद आ रहा है। मैं लन्दन आया हुआ था। जॉनी के माँ-बाप ने उसे पेरिस से लन्दन भेज दिया था, जैसाकि वे साल में कई बार करते थे। उसके दिमाग़ में अपने नाना को बस बनाकर उन पर, यानी "मूर" के कन्धों पर, सवारी करने का ख़याल पैदा हुआ। मैं और एंगेल्स घोड़े बनाये गये। जब हम ठीक तरीक़े से नाध दिये गये, तब मेटलैण्ड पार्क रोड पर स्थित मार्क्स के कॉटेज के पीछेवाले छोटे-से बाग़ के गिर्द दीवानावार घुड़दौड़ - मेरा मतलब है कि सवारी - शुरू हो गयी। हो सकता है यह घटना रीजेण्ट पार्क रोड पर एंगेल्स के घर हुई हो, क्योंकि लन्दन के मकान इतने समान हैं कि उनके बारे में - बाग़ों के बारे में तो और भी अधिक - आसानी से धोखा हो सकता है। बजरी और घास से ढँके चन्द वर्गमीटर, जिन पर "काली बर्फ़" अथवा लन्दनी कालिख बिछी रहती थी, जिसकी बदौलत यह तमीज़ नहीं की जा सकती कि कहाँ पर बजरी ख़त्म और घास शुरू होती है - ऐसे होते हैं लन्दन के "बाग़"।

सवारी चल पड़ी : टिक-टिक! अंग्रेजी, जर्मन और फ़्रांसीसी - अन्तरराष्ट्रीय सिसकारें गूँजने लगीं : "Go on! Plus vite! Hurrah!"।* "मूर" उस वक़्त तक दुलकते रहे, जब तक उनकी पेशानी से पसीना न बहने लगा। अगर एंगेल्स या मैं चाल को धीमी करने की कोशिश करते तो बेरहम कोचवान का चाबुक हमारी पीठों पर पड़ता : "नटखट घोड़े! बढ़ते चलो!" और यह सिलसिला तब तक चलता रहा, जब तक मार्क्स बेदम नहीं हो गये और तब हमें जॉनी से समझौता-वार्ता करनी पड़ी और विराम-सन्धि सम्पन्न हुई...

11 हेलेन

मार्क्स की एक बेटी के शब्दों में हेलेन, मार्क्स परिवार के प्रादुर्भाव के पहले दिन से ही घर का जीवन-प्राण थी। वह क्या कुछ नहीं करती थी, और सब कुछ ख़ुशी के साथ। हमेशा ख़ुशदिल, मुस्कराती हुई, हर घड़ी सभी की सहायता के लिए तत्पर। लेकिन वह गुस्सा भी हो सकती थी और "मूर" के दुश्मनों से बेहद घृणा करती थी।

जब श्रीमती मार्क्स बीमार या खिन्न होतीं, तब हेलेन माँ का स्थान ग्रहण कर लेती। यूँ भी, बहरहाल, वह बच्चों की दूसरी माँ के समान थी। वह बहुत

* बढ़ते चलो! और तेज़! हुर्रा! - *स.*

ही पक्के इरादेवाली, बहुत ही दृढ़ थी। वह जो कुछ ज़रूरी समझती, उसे अमली शक्ल देकर ही दम लेती।

जैसाकि कहा जा चुका है, घर में हेलेन एक प्रकार की अधिनायक थी। बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि हेलेन अधिनायक थी और श्रीमती मार्क्स स्वामिनी। मार्क्स मेमने की भाँति उस अधिनायकत्व को स्वीकारते थे।

कहा जाता है कि अपने नौकर की नज़र में कोई भी महान नहीं होता, निश्चय ही मार्क्स भी हेलेन की निगाह में महान नहीं थे। वह उनके लिए अपने को क़ुर्बान कर सकती थी; आवश्यक और सम्भव होने पर उनके, उनकी पत्नी और उनके किसी भी बच्चे के लिए हज़ार बार अपनी जान न्योछावर कर सकती थी। वास्तव में उसने उनके लिए अपनी जान न्योछावार की भी। लेकिन मार्क्स उस पर सिक्का नहीं जमा सकते थे। वह उनकी सारी सनकें और सारी कमज़ोरियाँ जानती थी और उन्हें अपने इशारों पर नचा सकती थी। यहाँ तक कि जब वे चिड़चिड़ाये होते और इस क़दर गरजते-तड़पते होते कि कोई उनके पास फटकने का भी साहस नहीं कर पाता था, तब भी हेलेन सीधे शेर की माँद में घुस जाती और अगर मार्क्स उन पर गुर्राते तो ऐसे फटकारती कि शेर भीगी बिल्ली बन जाता।

12 मार्क्स के साथ सैर

हैम्पस्टेड हीथ की वह हवाख़ोरी! अगर मैं हज़ार साल भी जीता रहूँ तो उन सैरों को नहीं भूल सकूँगा।

हैम्पस्टेड हीथ प्रिमरोज़ हिल की दूसरी तरफ है और ग़ैर-लन्दनवासी उस पहाड़ी की तरह ही डिकेन्स के पिकविकवालों की बदौलत उससे सुपरिचित हैं। उसका अधिकांश अब भी वीरान है, अब भी ग़ैर-आबाद है। यह झाड़-झंखाड़ों, टीलों तथा वादियों वाली पहाड़ी वनस्थली है। यहाँ कोई भी इस भय से निश्चिन्त होकर घूम-फिर सकता है कि पहरेदार अनधिकार प्रवेश के लिए पकड़कर जुर्माना करवा देगा। अब भी वह लन्दनवासियों के सैर-सपाटे का प्रिय स्थल है और जब रविवार को मौसम अच्छा होता है, तब वनस्थली में मर्दों के काले सूट और औरतों की रंग-बिरंगी पोशाकें ही पोशाकें दिखायी देती हैं। औरतें तो वहाँ सवारी के लिए मिलनेवाले निस्सन्दिग्ध रूप से धैर्यशील खच्चरों और घोड़ों के धैर्य की परीक्षा लेना ख़ासतौर से पसन्द करती हैं। चालीस साल पहले हैम्पस्टेड हीथ आज की अपेक्षा कहीं अधिक लम्बी-चौड़ी और कम कृत्रिम थी और वहाँ रविवार बिताना हमारे लिए अधिकतम आनन्द का स्रोत था।

बच्चे पूरे हफ़्ते उसकी बात करते रहते और वयस्क भी, बूढ़े और जवान सभी, अगले रविवार की प्रतीक्षा किया करते थे। वहाँ का तो सफ़र ही बड़ा आनन्ददायक होता था। लड़कियाँ चलने में माहिर थीं, गिलहरियों जैसी फुर्तीली और अनथक। मार्क्स परिवार डीन स्ट्रीट पर रहता था और कुछ ही क़दमों की दूरी पर चर्च स्ट्रीट में मैं बस गया था। वहाँ से कोई डेढ़ घण्टे का रास्ता था और हम आमतौर पर ग्यारह बजे रवाना हो जाते थे। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता था, क्योंकि लन्दन में लोग तड़के नहीं उठते और सबकुछ ठीक-ठाक करते, बच्चों को तैयार करते और टोकरी को अच्छी तरह से भरते-भराते कहीं अधिक देर लग जाती थी।

ओह, वह टोकरी! वह मेरे "मन की आँखों" के सामने उतने ही वास्तविक और यथार्थ, आकर्षक और स्वादिष्ट रूप में मँडराती रहती है, जैसे अभी कल ही मैंने हेलेन को उसे लेकर चलते देखा हो।

जब किसी स्वस्थ और सशक्त व्यक्ति की जेब में ताँबे के सिक्के भी बहुत न हों (उन दिनों चाँदी के सिक्कों का तो सवाल ही नहीं पैदा होता था), तो भोजन का महत्त्व मुख्य बन जाता है। हमारी नेक हेलेन यह जानती थी और उसके दयालु हृदय को अपने मेहमानों पर तरस आता था, जिन्हें अक्सर भरपेट खाना नहीं मिलता था और जो इस कारण सदा भूखे रहते थे। हैम्पस्टेड हीथ की रविवारी सैर के लिए गोश्त का एक बड़ा-सा भुना हुआ टुकड़ा परम्परा-प्रतिष्ठित मुख्य भोजन होता था। हेलेन द्वारा त्रियेर से लायी गयी एक टोकरी में, जो लन्दन के लिए असाधारण रूप से बड़े आकार की थी, सब कुछ रखकर ले जाया जाता था। उसी में चाय और शक्कर और कभी-कभी फल भी रख लिये जाते थे। रोटी और पनीर हैम्पस्टेड हीथ में ख़रीदे जा सकते थे, जहाँ बर्लिन के कैफ़े की तरह बरतन, गरम पानी और दूध भी उपलभ्य होता था। इसके अलावा वहाँ ज़रूरत और जेब की समायी को देखते हुए मक्खन, झींगे, सलाद आदि भी ख़रीदे जा सकते थे...

तो हमारी सैर इस प्रकार शुरू होती थी। आमतौर से दोनों लड़कियों को लेकर मैं आगे-आगे चलता और कहानियों, अथवा कलाबाज़ी के करतबों या आज की अपेक्षा अधिक प्रचुर वन्य-पुष्पों के चयन द्वारा उनका मनोरंजन करता रहता। हमारे पीछे चन्द दोस्त होते और तब मुख्य क़ाफ़िला होता - मार्क्स, उनकी पत्नी और विशेष ध्यान योग्य कोई रविवारी मेहमान। सबसे पीछे होती थी हेलेन और हमारे दल का सबसे भूखा व्यक्ति, जो टोकरी ढोने में उसकी मदद करता था। अगर हमारे दल में अधिक लोग होते, तो वे विभिन्न टुकड़ियों में बँट जाते थे। ज़ाहिर कि इस यात्रा-क्रम में इच्छा और

आवश्यकता के अनुसार भिन्नता आती रहती थी।

हैम्पस्टेड हीथ में पहुँचकर हम सबसे पहले तो अपना ख़ेमा गाड़ने की कोई जगह तलाश करते थे और इस सम्बन्ध में चाय और बियर मिलने की सुविधा का यथासम्भव ध्यान रखते थे।

खा-पीकर सैर में शरीक सभी लोग लेटने या बैठने की सबसे आरामदेह जगह तलाश कर लेते थे और जिनकी झपकी लेने की इच्छा नहीं होती थी, वे रास्ते में ख़रीदे गये रविवारी अख़बार निकाल लेते और राजनीति की चर्चा करने लगते। बच्चे शीघ्र खेलने के लिए साथी ढूँढ़ निकालते और झाड़ियों में आँख-मिचौनी खेलने लगते।

लेकिन उन सुखकर मनबहलावों में भी विविधता पैदा करना ज़रूरी होता था : दौड़ें, कुश्तीबाज़ी, अधिक से अधिक दूरी तक पत्थर फेंकने की होड़ें आयोजित की जाती थीं और तरह-तरह के दूसरे खेल खेले जाते थे। एक दिन हम लोगों को पके फलों से लदा चेस्टनट का पेड़ पास ही नज़र आ गया। किसी ने कहा, "अच्छा देखें, कौन इसके सबसे अधिक फल गिराता है!" और हम लोग हुर्रा की ललकार लगाकर काम में जुट गये। मार्क्स भी किसी से पीछे नहीं रहे। यह गोलाबारी तब तक बन्द नहीं हुई, जब तक कि आख़िरी फल नीचे नहीं गिरा लिया गया। एक हफ़्ते तक मार्क्स अपना दाहिना हाथ न हिला-डुला सके और मेरी हालत भी कुछ अधिक बेहतर नहीं थी।

सबसे अधिक मज़ेदार चीज़ हम लोगों की ख़च्चरों की सवारी होती थी। तब हम कितना हँसते और ठट्ठा मारते थे और हम कैसे अजीब-अजीब से दृश्य प्रस्तुत करते थे! मार्क्स ख़ुद भी ख़ुश होते थे और हमें भी ख़ुशी प्रदान करते थे - हमें दुगुनी, क्योंकि एक तो वे सवारी के फ़न में अनाड़ी थे और दूसरे हमें उस हुनर में अपने कमाल का विश्वास दिलाने के लिए जाने कितनी अजीबोग़रीब हरकतें करते थे। उस हुनर में उनके कमाल का सार यह था कि कभी विद्यार्थी जीवन में उन्होंने घुड़सवारी के कुछ सबक़ लिए थे - एंगेल्स का दावा था कि वे तीसरे सबक़ से आगे कभी नहीं बढ़े थे - और मैनचेस्टर की अपनी विरल यात्राओं में एक वयोवृद्ध रोज़िनाण्टे* की सवारी करते थे, जो सम्भवतः बूढ़े फ़्रित्स द्वारा दिलेर गेलर्ट** को समर्पित परमधीर घोड़े का पोता था।

हैम्पस्टेड हीथ से घर को वापसी का रास्ता हमेशा बहुत आनन्ददायक

---

* सर्वान्तीस के उपन्यास के पात्र डॉन क्विक्ज़ोट के घोड़े से अभिप्राय है। - *स.*

** प्रशिया के बादशाह फ़्रेडरिक द्वितीय ने दरबारी कवि गेलर्ट को भेंटस्वरूप यह घोड़ा दिया था। - *स.*

होता था, हालाँकि विगत आनन्द की अपेक्षा आगामी आनन्द हमेशा अधिक सुखकर होता है। हमारे लिए उदासी के पर्याप्त कारण थे, लेकिन हम अपनी असाध्य विनोदप्रियता द्वारा उससे सुरक्षित रहते थे। हमारे लिए उत्प्रवास की परेशानियों का अस्तित्व नहीं था और जो कोई भी उनकी शिकायत करता, उसे फ़ौरन ज़ोर-शोर से समाज के प्रति उसके कर्त्तव्यों की याद दिलायी जाती थी।

वापसी के समय सैलानियों का क्रम बदल जाता था। दिनभर की भागदौड़ से थके हुए बच्चे हेलेन के साथ सबसे पीछे-पीछे चलते थे और टोकरी के ख़ाली होने से भारमुक्त हेलेन उनकी देखभाल कर सकती थी। आमतौर से हम कोई न कोई गाना शुरू कर देते थे। हम राजनीतिक गाने बिरले ही गाते थे। हमारे गाने अधिकतर भावनापूर्ण लोक-गीत होते थे - मैं यह बिल्कुल सच कह रहा हूँ - देशभक्ति के गीत, जैसेकि "ओ स्ट्रासबुर्ग, स्ट्रासबुर्ग, तू है अद्‌भुत नगर!", जो हमें ख़ासतौर से प्रिय था। अथवा बच्चे हमें नीग्रो लोगों के गान सुनाते और अगर बहुत थके न होते तो उनकी धुनों पर नाचते भी। सैर के दौरान राजनीति की भी उतनी ही कम बातें होती थीं, जितनी उत्प्रवास की परेशानियों की। अक्सर साहित्य और कला की ही चर्चा होती, जिससे मार्क्स को अपनी आश्चर्यजनक स्मरण-शक्ति प्रदर्शित करने का अवसर मिलता था। *डिवाइन कॉमेडी** उन्हें प्रायः कण्ठस्थ थी, जिसके लम्बे-लम्बे अंश तथा शेक्सपियर के नाटकों के दृश्य वे सुनाया करते थे। अक्सर उनके स्थान पर उनकी पत्नी शेक्सपियर सुनाती थीं। शेक्सपियर सम्बन्धी उनका ज्ञान भी उत्कृष्ट था...

छठी दशाब्दी के अन्त में हम उत्तरी लन्दन के केण्टिश टाउन और हैवर्स्टाक हिल नामक स्थानों पर बसे। तब हैम्पस्टेड और हाईगेट के बीच और परे के पहाड़ी मैदान हमारी हवाख़ोरी के प्रिय स्थान बन गये। वहाँ हम फूल चुनते और पौधों की जानकारी प्राप्त करते, जिससे शहरी बच्चों को दोहरी ख़ुशी होती, जिनके मन में बड़े नगर के नीरस, कोलाहलपूर्ण पाषाण-सागर के कारण हरियाली और प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए लगाव पैदा हो गया था। उस दिन हमें कितनी ख़ुशी हुई थी, जब अपनी एक सैर के दौरान हमें कुछ पेड़ों की छाया में एक तालाब मिल गया था और मैंने बच्चों को पहला वन्य "फ़ोर्गेट मी नॉट" फूल दिखाया था। उससे भी बढ़कर ख़ुशी हमें तब हुई थी, जब हम सावधानी से चारों तरफ का सुराग़ लेकर और "प्रवेश-निषेध" की अवज्ञा करके गहरे हरे रंग के मख़मली कुंज में पहुँचे थे और एक हवा से

* महान इतावली कवि दान्ते का महाकाव्य। - *स.*

सुरक्षित स्थान पर हमने हायसिन्थ के और अन्य वसन्ती फूल पाये थे... पहले तो मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि अब तक मैं यही जानता था कि वन्य हायसिन्थ पुष्प केवल दक्षिणी देशों में ही उगते हैं – स्विट्ज़रलैण्ड में जेनेवा झील के पास, इटली में और यूनान में, उससे आगे उत्तर में नहीं। यहाँ मैंने उक्त धारणा के विरुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण देखा और अंग्रेज़ों के इस दावे की अप्रत्याशित पुष्टि हुई कि जहाँ तक फूलों का सम्बन्ध है, ब्रिटेन की जलवायु इटली जैसी ही है। निस्सन्देह वे हायसिन्थ के ही फूल थे – सामान्य, हल्के नीले, उतने बड़े नहीं जितने फुलवारियों में उगनेवाले होते हैं और एक डाली पर उतने बहुसंख्यक भी नहीं, लेकिन वही खुशबू, यद्यपि कुछ अधिक तीखी।

हमने अपने इस सुगन्धिपूर्ण कुंज से दुनिया पर, कुहासे के कुरूप रहस्य से आच्छादित अपनी विराटता में सामने फैले हुए संसार के उस प्रकाण्ड असीम नगर पर गर्व के साथ दृष्टि डाली।

13 कुछ अप्रिय क्षण

रैबेले* के चन्द अप्रिय क्षणों से कौन परिचित नहीं, जिनके दौरान मदिरालय के मालिक को पैसे अदा करना ज़रूरी होता था, वरना हालत और बदतर हो सकती थी। ऐसे क्षण किसने नहीं झेले हैं? मैंने भी झेले हैं। ऐसे क्षण आये परीक्षा से पहले, मेरे प्रथम भाषण के पूर्व और उस समय, जब पहली बार जेल के दरवाज़े के सामने सन्तरी ने मुझे अपनी पेटी और टाई उतार देने का आदेश दिया था, ताकि मैं आत्महत्या करके कोर्ट मार्शल से बचने की कोशिश न कर सकूँ। यह बात उसने मेरी चकित जिज्ञासा के उत्तर में बेलाग साफ़दिली के साथ बतायी थी। वे और वैसी ही अन्य घड़ियाँ भी निश्चय ही अप्रिय थीं। लेकिन जिन क्षणों का मैं ज़िक्र करना चाहता हूँ, उनकी तुलना में उक्त क्षण सह्य ही नहीं, प्रिय भी थे। उनकी अवधि पन्द्रह मिनट भी नहीं रही होगी, हद से हद दस मिनट या शायद पाँच मिनट ही। मैंने समय जाँचा नहीं, ऐसा करने का वक़्त ही नहीं था। वक़्त होता भी तो मेरे पास घड़ी नहीं थी। उत्प्रवासी और घड़ी! मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि वे क्षण मेरे लिए अनन्त थे।

यह घटना लन्दन में 18 नवम्बर, 1852 को हुई।

"लौह ड्यूक" और "शत युद्ध-विजेता", लॉर्ड वेलिंगटन, जिन्हें ब्रिटिश

---

* **रैबेले, फ़्रांस्वा** (लगभग 1494-1553) – पुनर्जागरणकाल के महानतम फ़्रांसीसी लेखक-मानवतावादी। – *स.*

जनता ने सुधार-आन्दोलन के दौरान विनम्र-विनीत बना दिया था, 14 सितम्बर को वामर की अपनी गढ़ी में मर गये थे... उस "राष्ट्रीय नायक" की अन्त्येष्टि "राष्ट्रीय सजधज" के साथ सेण्ट पॉल के चर्च में होनी थी, जहाँ उन्हें अन्य "राष्ट्रीय नायकों" के पहलू में दफ़नाया जाना था। उनकी मौत के दिन से ही, यानी प्रायः दो महीने तक सारा ब्रिटेन, ख़ासतौर से सारा लन्दन इसी अन्त्येष्टि समारोह की बात कर रहा था, जो शान और शौक़त में पहले के सभी राष्ट्रीय अनुष्ठानों को मात दे देनेवाला था, जैसेकि अंग्रेज़ों के दावे के अनुसार स्वयं उक्त ड्यूक ने पहले के सभी नायकों को पीछे छोड़ दिया था... अनुष्ठान का दिन आ पहुँचा।

सारा ब्रिटेन गतिमान था। सारा लन्दन चल रहा था। देश के कोने-कोने से आनेवाले लाखों और विदेश से आनेवाले हज़ारों लोगों ने लन्दन की लाखों की संख्या को और भी बहुत बढ़ा दिया था।

मैं ऐसे तमाशों और जुलूसों को नापसन्द करता हूँ और अपने अनेक उत्प्रवासी साथियों की तरह उस समय या तो अपने घर पर पड़े रहने अथवा जेम्स पार्क चले जाने को तरज़ीह देता हूँ। लेकिन दो दोस्तों ने मुझे अपना इरादा बदलने को मजबूर कर दिया...

वे सचमुच ही मेरी बहुत पक्की दोस्त थीं - काली आँखों तथा काले-घँघराले बालों वाली जेनी, जो "मूर" की, अपने पिता की बिल्कुल प्रतिमूर्ति थी, तथा सुकोमल, सुनहरे बालों और चंचल आँखों वाली लॉरा, जो अपनी आकर्षक माँ का ही रूप थी।

दोनों लड़कियाँ प्रथम परिचय के समय ही मेरे साथ हिल-मिल गयी थीं और मेरे पहुँचते ही मुझ पर अपना अधिकार कर लेती थीं। लन्दन के अपने उत्प्रवासी जीवन के दौरान अगर मैं ज़िन्दगी को ख़ुशगवार बनानेवाली अपनी ख़ुशदिली क़ायम रख सका, तो उसका अधिकतर श्रेय उन्हें ही था। मन के अत्यधिक खिन्न होने पर मैं अक्सर अपनी प्रिय नन्ही दोस्तों के पास भाग जाता था और उनके साथ सड़कों तथा बाग़ों की सैर किया करता था! तब मेरी उदास चिन्तना के बादल छँट जाते थे और संघर्ष के निमित्त शक्ति तथा सुख देनेवाली ख़ुशमिज़ाजी लौट आती थी।

आमतौर से मुझे उन्हें कहानियाँ सुनानी पड़ती थीं - परिचय के चन्द दिनों बाद ही मैं अच्छा क़िस्सागो मान लिया गया था और मेरा सदैव तुमुल आह्लाद के साथ स्वागत होता था। सौभाग्य से मुझे बहुतेरी कहानियाँ याद थीं और जब मेरा कथा-भण्डार समाप्त हो गया, तब मुझे और कहानियाँ गढ़नी पड़ीं...

जब मैं बेसब्री से उछलती-कूदती लड़कियों को लेकर तमाशे के लिए रवाना हुआ, तो श्रीमती मार्क्स ने कहा, "बच्चों का ध्यान रखियेगा। जहाँ भीड़ बहुत अधिक हो, वहाँ मत जाइएगा।" और हम अभी दरवाज़े पर ही थे कि चिन्ताकुल भाव से हमारे पीछे दौड़कर आनेवाली हेलेन ने पुकारकर कहा, "प्यारे लाइब्रेरी, बहुत सावधान रहिएगा!" (यह अजीब-सा उपनाम मुझे बच्चों ने दे रखा था)।

मेरी योजना तैयार थी। किसी खिड़की या किसी अड्डे पर जगह पाने के लिए हमारे पास पैसे नहीं थे। चूँकि जुलूस स्ट्रेण्ड से होकर नदी के किनारे-किनारे जानेवाला था, इसलिए हमें स्ट्रेण्ड से नदी की ओर जानेवाली किसी एक सड़क पर ही बढ़ जाना था।

लड़कियाँ दोनों तरफ से मेरे हाथ पकड़े हुई थीं। मेरी जेब में कलेवा था। हम अपने निर्धारित स्थान की ओर चल पड़े, जो टेम्पुल बार और पुराने नगर-फाटकों के पास वेस्टमिनस्टर तथा सिटी के बीच था। सुबह से ही सड़कों पर लोगों की भरमार थी और अब तो वे खचाखच भर गयीं थीं। लेकिन चूँकि जुलूस को राजधानी के दूरस्थ हलक़ों से होकर गुज़रना था, इसलिए भीड़ विभिन्न सड़कों पर बँट गयी और हम रेलमपेल के बिना ही निर्धारित स्थान पर पहुँच गये। जगह का मेरा चुनाव अच्छा साबित हुआ। मैं वहाँ बनी सीढ़ियों पर खड़ा हो गया और दोनों लड़कियाँ मुझसे एक सीढ़ी ऊपर, मेरा हाथ पकड़े और एक दूसरी से सटकर खड़ी हो गयीं।

अरे, वह क्या है? उमड़ता हुआ जन-सागर। दूरस्थ सागर की दबी-घुटी गूँज निकट से निकटतर आती गयी... बच्चियाँ पुलकित हो उठीं। कोई धकापेल नहीं हुई और मेरी चिन्ता दूर हो गयी।

बड़ी देर तक हमारे सामने से स्वर्णदीप्त जुलूस अन्तहीन तारतम्य में गुज़रता रहा, यहाँ तक कि सोने की झालरों से सज्जित अन्तिम घुड़सवार भी गुज़र गया और तमाशा समाप्त हो गया।

अचानक हमारे पीछे संकुलित भीड़, जुलूस का अनुगमन करने की उत्सुकता में झोंक के साथ आगे उचकी। मैंने पूरी ताक़त से अपने पैर जमा दिये और बच्चियों का बचाव करने की कोशिश की, ताकि भीड़ उनसे टकराये बग़ैर ही आगे निकल जाए। किन्तु व्यर्थ! उमड़ती भीड़ की शक्ति के सामने कोई भी मानवीय बल उसी तरह नहीं टिक सकता, जैसे कठोर शीत के बाद प्लावी हिमखण्ड को कोई नाजुक नौका नहीं तोड़ सकती। मुझे अपना यह प्रयास छोड़ना पड़ा और लड़कियों को मज़बूती से अपने साथ चिमटाए हुए मैंने मुख्य रेले में से निकल जाने की कोशिश की। लगा कि मैं सफल हो

रहा हूँ और मैंने इत्मीनान की साँस ली। लेकिन इतने में दायीं ओर से एक और प्रचण्डतर इन्सानी रेला हम पर पिल पड़ा; हम तटबन्ध पर ठेल दिये गये और वहाँ संकुलित हज़ारों-लाखों लोग जुलूस का पीछा कर रहे थे, ताकि उस तमाशे को एक बार फिर देख सकें। मैंने लड़कियों को अपने कन्धों पर उठा लेने की कोशिश की, लेकिन भीड़ का दबाव मेरे आसपास बेहद अधिक था। मैंने बच्चियों की बाँहें कसकर पकड़ लीं, लेकिन जन-बवण्डर हमें ठेलता चला गया। यकायक मुझे महसूस हुआ कि मेरे और बच्चियों के बीच कोई शक्ति चीरती हुई घुसी आ रही है जिसने बच्चियों को झटके के साथ मुझसे झपट लिया। प्रतिरोध व्यर्थ था। मुझे इस डर से उनकी बाँहें छोड़ देनी पड़ीं कि कहीं वे टूट न जाएँ या कहीं उनकी हड्डी न उतर जाए। वह बहुत ही भयानक क्षण था।

अब क्या करूँ? अपनी तीन गुज़रगाहों के साथ टेम्पुल बार का फाटक मेरे सामने था। बीच की गुज़रगाह सवारियों के लिए थी और अग़ल-बग़ल की गुज़रगाहें पैदल चलनेवालों के लिए। मानवीय ज्वार फाटकों पर वैसे ही उमड़ रही थी, जैसे पुलों के स्तम्भों पर जलावर्त। मुझे इस भीड़ को चीरते हुए आगे जाना ही था! मेरे चतुर्दिक उठती हुई भयानक चीख़ों ने परिस्थिति की समस्त विपन्नता स्पष्ट कर दी। अगर बच्चियाँ पैरों तले कुचली नहीं गयीं, तो वे मुझे उस पार मिलेंगी, जहाँ दबाव हलका हो गया होगा। काश कि ऐसा ही हो! मैंने कुहनियों और सीने से दीवानों की तरह धक्के दिये। लेकिन ऐसी तूफ़ानी ज्वार में अकेला आदमी बवण्डर में तिनके के समान होता है। लेकिन मैं जूझता ही गया, जूझता ही गया। दर्जनों बार मुझे लगा कि मैं निकल गया, लेकिन बार-बार एक ओर को ठेल दिया जाता था। अन्त में एक हिचकोला आया, प्रचण्ड धक्कमपेल हुई और पलक मारते ही मैं घनी भीड़ में से निकल गया। मैंने बेचैनी से इधर-उधर देखकर बच्चियों की तलाश की। कहीं नहीं! मेरा दिल बैठ गया। तभी दो स्पष्ट बचकानी आवाज़ें आयीं :

"लाइब्रेरी!"

मुझे लगा कि जैसे मैं सपना देख रहा हूँ। मगर दोनों बच्चियाँ मेरे सामने खड़ी थीं, मुस्कुराती हुई और सही-सलामत। मैंने उन्हें चूमा और गले लगाया।

क्षणभर को मैं बिल्कुल अवाक् था। तब उन्होंने मुझे बताया कि कैसे उस तूफ़ानी धारा ने, जिसने उन्हें मेरी मुट्ठियों से झटककर छीन लिया था, उन्हें फाटक से सुरक्षित रूप में पार निकालकर उन्हीं दीवारों के पास एक तरफ को फेंक दिया था, जिनके कारण दूसरी जानिब भीड़ गतिरुद्ध हो गयी थी। वहाँ पर वे दीवार के आगे को निकले हुए एक भाग के साथ सटकर खड़ी

रह गयी थीं, क्योंकि उन्हें मेरी यह हिदायत याद आ गयी थी कि अगर हमारी सैरों में वे कभी खो जायें, तो यथासम्भव जहाँ हों, वहीं बनी रहें।

हम विजयोल्लास के साथ घर लौटे। मार्क्स, उनकी पत्नी और हेलेन ने हमारा हर्षपूर्वक स्वागत किया, क्योंकि वे सभी बहुत चिन्तित थे। वे सुन चुके थे कि भीड़ भयानक थी और बहुत-से लोग कुचल दिये गये थे, घायल हो गये थे। बच्चियों को इस बात का गुमान तक नहीं था कि वे कितने बड़े ख़तरे में पड़ गयीं थीं। वे तो बहुत ही ख़ुश थीं और मैंने भी उस शाम किसी को यह नहीं बताया कि उन चन्द क्षणों में मुझपर क्या कुछ गुज़र चुकी थी।

कई औरतों की उसी जगह जान चली गयी थी, जहाँ बच्चियाँ मुझसे झपट ली गयी थीं। उन मनहूस घड़ियों की याद मेरे लिए इस तरह ताज़ा है, जैसे अभी कल ही की बात हो...

14 मार्क्स और शतरंज

मार्क्स ड्राफ़्ट बहुत अच्छा खेलते थे। इस खेल में वे इतने सिद्धहस्त थे कि उन्हें हराना मुश्किल था। शतरंज खेलने में भी उन्हें मज़ा आता था, लेकिन उसमें वे कुछ ख़ास माहिर नहीं थे। उसमें दक्षता की कमी को वे जोश-ख़रोश और आकस्मिक हमले द्वारा पूरा करने की कोशिश करते थे।

छठी दशाब्दी के शुरू में हम उत्प्रवासियों के बीच शतरंज आम खेल था। हमारे पास ज़रूरत से ज़्यादा समय था और हम लाल वोल्फ़ के नेतृत्व में, जो पेरिस के बेहतरीन शतरंजी हलक़ों में अक्सर खेले थे और खेल के कुछ दाँव-पेच सीख चुके थे, यह "बुद्धिमानों का खेल" बहुत खेला करते थे।

कभी-कभी हमारे बीच पुरजोश शतरंजी दंगल होते थे। जो हार जाता था, उसका ख़ूब मज़ाक़ बनाया जाता था। खेल के दौरान ज़िन्दादिली रहती थी, और अक्सर बहुत शोर-शराबा रहता था।

मार्क्स कठिन स्थिति में पड़ने पर चिढ़ जाते और हार जाने पर आग बबूला हो उठते। ओल्ड कॉम्प्टन स्ट्रीट के मॉडल लॉजिंग-हाउस* में, जहाँ

---

* **मॉडल लॉजिंग-हाउस** - बैरक जैसी इमारत जिसमें किरायेदारों के लिए अलग-अलग कमरे, साझा रसोईघर और बैठकख़ाना तथा पढ़ने और धूम्रपान का एक साझा कमरा होता था। लन्दन में ऐसे अनेक मकान थे। ऐसी कुछ इमारतों में परिवारों के लिए अनेक कमरों और उपर्युक्त साझे कमरों के अलावा धुलाई का एक साझा कमरा भी होता था। एक विशेष कारिन्दा ऐसी इमारतों का प्रबन्धक होता था। इमारतें बेहद साफ़-सुथरी रखी जाती थीं। लन्दन में अभी भी ऐसी कई संस्थाएँ सफलतापूर्वक चलायी जा रही हैं। **(लीबनेख़्त का नोट)**

हममें से कई लोग कुछ समय तक साढ़े तीन शिलिंग साप्ताहिक किराये पर रहते थे, हम हमेशा अंग्रेज़ों से घिरे रहते थे। वे हमारे खेल को उत्कण्ठित दिलचस्पी के साथ देखा करते थे (ब्रिटेन के मज़दूरों में भी शतरंज लोकप्रिय था) और खेल के साथ चलनेवाले हँसी-ख़ुशी के कोलाहल का भी मज़ा लेते थे, क्योंकि दो-एक दर्जन अंग्रेज़ों की तुलना में दो जर्मन कहीं अधिक शोर मचाते हैं।

एक दिन मार्क्स ने हमें उल्लासपूर्वक सूचना दी कि उन्होंने एक ऐसी नयी चाल खोज निकाली है, जो हम सभी को पराजित कर देगी। उनकी चुनौती स्वीकार कर ली गयी और उन्होंने सचमुच हम सभी को बारी-बारी से हरा दिया। लेकिन हमने अपनी हार से शीघ्र ही सबक़ लिया और मैं मार्क्स को मात देने में कामयाब हो गया। काफ़ी देर हो चुकी थी, इसलिए उन्होंने दूसरी सुबह अपने घर पर जवाबी खेल के लिए आग्रह किया।

ठीक ग्यारह बजे, जो लन्दन के लिए बहुत सवेरा समझा जाता है, मैं मार्क्स के यहाँ पहुँच गया। वे अपने कमरे में नहीं थे, लेकिन मुझे बताया गया कि जल्द ही आनेवाले हैं। श्रीमती मार्क्स कहीं दिखायी नहीं पड़ीं और हेलेन का मूड भी कुछ अच्छा नहीं दिख रहा था। इससे पहले कि मैं पूछूँ कि मामला क्या है कि "मूर" आ गये। उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और शतरंज की बिसात निकाल ली।

मोर्चा जम गया। मार्क्स ने रात में अपनी चाल को और बेहतर बना लिया था और जल्दी ही मैं बुरी तरह फँस गया। मैं मात खा गया और मार्क्स बाग़-बाग़ हो गये। उन्होंने सैण्डविचों के साथ कुछ पीने को मँगवाया। फिर हम दूसरी बाज़ी खेले और मैं जीत गया और इस प्रकार हम बदलते हुए मिज़ाज के साथ हारते-जीतते खेलते रहे...

श्रीमती मार्क्स एक बार भी दिखायी नहीं पड़ीं और किसी बच्ची ने भी नज़दीक फटकने का साहस नहीं किया। बाज़ियाँ चलती रहीं, कभी एक के पक्ष में, तो कभी दूसरे के। अन्त में मैंने मार्क्स को लगातार दो बार मात दे दी। उन्होंने खेल को जारी रखने का आग्रह किया, लेकिन तभी हेलेन ने निर्णायक ढंग से कह दिया : "बस, बहुत हो चुका!..."

15 अभाव और तंगहाली

मार्क्स की बाबत अविश्वसनीय संख्या में झूठी बातें उड़ायी गयी हैं। दूसरी बातों के अलावा यह भी कहा गया है कि वे रंगरेलियों का हंगामी जीवन बिताते थे, जबकि उनके हलक़े के अधिकतर उत्प्रवासी भूखे रहते थे।

मैं यह दावा नहीं करता कि मुझे ब्योरे में जाने का अधिकार है, लेकिन इतना कह सकता हूँ कि श्रीमती मार्क्स की टीपों से मुझे इस बात के बारम्बार और ज्वलन्त प्रमाण मिले हैं कि मार्क्स और उनके परिवार के लिए निर्धनता की कटु घड़ियाँ बिरली और संयोगवश ही नहीं थीं, जो सर्वथा असहाय उत्प्रवासियों लोगों के लिए सदा ही सम्भव हैं, बल्कि उन्हें उत्प्रवास में बरसों तीव्रतम अभाव के कष्ट झेलने पड़े। मार्क्स और उनके परिवार से अधिक कष्टभोगी उत्प्रवासी शायद बहुत नहीं थे। यहाँ तक कि बाद में भी, जब उनकी आमदनी अपेक्षाकृत अधिक और ज़्यादा नियमित हो गयी थी, वे अभाव की चिन्ता से मुक्त नहीं हुए। बदतरीन दिनों के बीत जाने पर भी बरसों तक *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून* से लेखों के लिए हर सप्ताह मिलनेवाला एक पौण्ड ही मार्क्स की एकमात्र सुनिश्चित आमदनी थी...

16 मार्क्स की बीमारी और मौत

*(तुस्सी का पत्र)**

"मुस्ताफ़ा (अल्जीरिया) में "मूर" के आवास के बारे में मैं बस इतना ही कह सकती हूँ कि मौसम बहुत बुरा था, कि "मूर" एक बहुत अच्छा और योग्य डॉक्टर पा गये और यह कि होटल में हर कोई उन्हें चाहता था, उनका ध्यान रखता था।

"1881-1882 की पतझड़ और जाड़ों में "मूर" पहले पेरिस के निकट आर्जेन्त्योए में जेनी के साथ रहे। हम उनसे वहीं मिले और चन्द हफ़्ते ठहरे। उसके बाद वे फ़्रांस के दक्षिण में और अल्जीरिया चले गये। लेकिन जब लौटे तो उनकी तबीयत काफ़ी ख़राब थी। 1882-1883 की पतझड़ और जाड़ा उन्होंने बेन्तनोर (व्हाइट टापू) में बिताया और जेनी की मौत के बाद 12 जनवरी, 1883 को वापस आए।

"अब सुनिये कार्ल्सबाद की बात। हम वहाँ पहले पहल 1874 में गये थे। तब 'मूर' को जिगर की तक़लीफ़ और अनिद्रा के कारण वहाँ भेजा गया था। चूँकि प्रथम आवास के दौरान उन्हें वहाँ असाधारण स्वास्थ्य-लाभ हुआ था, इसलिए 1875 में वे अकेले वहाँ दुबारा गये। अगले साल 1876 में मैं फिर उनके साथ गयी, क्योंकि उन्होंने कहा कि पिछले साल मेरा अभाव उन्हें बहुत महसूस हुआ था। कार्ल्सबाद में वे अपने इलाज के बारे में अधिक विवेकशील थे और नियमनिष्ठा के साथ अपने लिए विहित सबकुछ का पालन करते थे।

---

* यहाँ लीबनेख़्त ने मार्क्स की सबसे छोटी बेटी, एल्योनोरा, (जिसे परिवार में तुस्सी कहा जाता था) से प्राप्त एक पत्र उद्धृत किया है। - *स.*

"वहाँ हमारे अनेक मित्र बन गये। "मूर" के साथ यात्रा करना आनन्ददायक था। वे हमेशा ख़ुशमिज़ाज रहते और हर चीज़ से, चाहे वह कोई सुन्दर दृश्य हो अथवा एक गिलास बियर, आनन्द-लाभ करने को तत्पर रहते थे। उनका अपार इतिहास-ज्ञान हर उस स्थान को जहाँ हम जाते, वर्तमान की अपेक्षा अतीत में अधिक सजीव और अधिक विद्यमान बना देता।

"मेरा अनुमान है कि "मूर" के कार्ल्सबाद के आवास की बाबत थोड़ा-बहुत लिखा जा चुका है। मैंने एक लम्बे लेख की बात भी सुनी है, लेकिन मुझे यह याद नहीं रहा कि वह किस अख़बार में था।

"1874 में हम आपसे लीप्ज़िग में मिले थे। वापसी में हम चक्कर काटकर बिन्गेन गये। "मूर" मुझे बिन्गेन दिखाना चाहते थे, क्योंकि वे मेरी माँ के साथ हनीमून मनाने वहाँ गये थे। इन दो यात्राओं में हमने ड्रेस्डेन, बर्लिन, प्राग, हैम्बर्ग और न्यूरेम्बर्ग का भी दौरा किया।

"1877 में "मूर" फिर कार्ल्सबाद जानेवाले थे, लेकिन हमें पता चला कि जर्मन और आस्ट्रियाई अधिकारी उन्हें वहाँ से निकाल देने का इरादा रखते हैं और चूँकि निकाले जाने का ख़तरा उठाने के लिए यात्रा बहुत ख़र्चीली और लम्बी थी, इसलिए "मूर" वहाँ फिर नहीं गये। यह उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर बात थी, क्योंकि कार्ल्सबाद में इलाज के बाद वे सदा ऐसा महसूस करते थे मानो उनमें नयी ज़िन्दगी आ गयी हो।

"बर्लिन हम मुख्यत: पिता के वफ़ादार दोस्त, अपने प्रिय चाचा एडगर फ़ॉन वेस्टफ़ॉलेन से मिलने के लिए गये। हम वहाँ केवल कुछ ही दिन ठहरे। "मूर" को यह सुनकर बड़ा मज़ा आया कि तीसरे दिन हमारे वहाँ से विदा होने के घण्टेभर बाद ही हमारे होटल पर पुलिस पहुँची।"

* * *

"1881 की पतझड़ तक हमारी प्यारी माँ इतनी बीमार हो गयीं कि कभी-कभी ही बिस्तर से उठतीं। "मूर" अपनी तबीयत की ख़राबी के बारे में हमेशा बहुत लापरवाही बरतते थे, सो उन्हें भी प्ल्यूरिसी ने बुरी तरह धर दबाया। डॉक्टर की, हमारे नेक दोस्त डंकिन, की राय में उनकी बीमारी प्राय: असाध्य थी। वह भयानक समय था। प्यारी माँ आगेवाले बड़े कमरे में पड़ी थीं और "मूर" बग़लवाले छोटे कमरे में। वे दोनों एक-दूसरे के सान्निध्य के इतने आदी हो चुके थे, उनके जीवन एक-दूसरे के अंग बन चुके थे, लेकिन अब वे साथ-साथ एक ही कमरे तक में नहीं रह सकते थे।

"हमारी भली बूढ़ी हेलेन - आप तो जानते ही हैं कि वह हमारे लिए

क्या थी – और मैं उन दोनों की तीमारदारी करती थीं। डॉक्टर का कहना था कि हमारी तीमारदारी ने ही "मूर" को बचा लिया। बात चाहे जो भी रही हो, मैं बस इतना ही जानती हूँ कि तीन हफ़्ते तक न तो हेलेन ने बिस्तर को पीठ लगायी और न मैंने ही। हम रात-दिन पैरों पर ही काट देतीं और बेहद थक जाने पर बारी-बारी से घण्टे-घण्टेभर को आराम कर लेतीं।

""मूर" फिर अपनी बीमारी पर क़ाबू पा गये। मुझे वह सुबह कभी न भूलेगी, जब उन्होंने अपनेआप माँ के कमरे तक जाने की ताक़त महसूस की। एकसाथ होने पर वे दोनों जैसे फिर जवान हो उठे – एक-दूसरे से हमेशा के लिए बिछड़नेवाले रोगग्रस्त वृद्ध और मरती हुई वृद्धा के बजाय जैसे प्रेमी युवक और युवती बन गये।

""मूर" कुछ अच्छे हो गये और हालाँकि उनकी कमज़ोरी अभी पूरी तरह दूर नहीं हुई थी, फिर भी ताक़त आने लगी थी।

"तभी 2 दिसम्बर, 1881 को माँ का देहान्त हो गया। उनके अन्तिम शब्द – अजीब बात थी कि वे अंग्रेज़ी में कहे गये थे – उनके 'कार्ल' के लिए थे।

"जब हमारे प्रिय 'जनरल' (एंगेल्स) आये, तो उन्होंने एक ऐसी बात कही जिसे सुनकर उस समय मैं प्राय: आपे के बाहर हो गयी थी। उन्होंने कहा : '"मूर" भी मर गये।'

"और यह बात सच थी।

"प्यारी माँ के जीवन के साथ ही "मूर" का जीवन भी चुक गया। उन्होंने जीवन से चिपके रहने के लिए घोर संघर्ष किया – संघर्षप्रिय तो वे अन्त तक बने रहे – लेकिन वे टूट चुके थे। उनके स्वास्थ्य की आम हालत बद से बदतर होती गयी। अगर उन्हें केवल स्वचिन्ता होती, तो वे सबकुछ से किनारा करके बैठ रहते। लेकिन उनके लिए एक चीज़ सर्वोपरि थी – लक्ष्य के प्रति वफ़ादारी। उन्होंने अपनी महान कृति को पूरा करने की कोशिश की और इसीलिए अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए फिर से यात्रा करने को राज़ी हो गये।

"1882 के वसन्त में वे पेरिस और ऑर्जेन्त्योए गये, जहाँ मैं उनसे मिली। हम लोगों ने जेनी और उनके बच्चों के साथ वास्तविक ख़ुशी के चन्द दिन बिताये। उसके बाद "मूर" फ़्रांस के दक्षिण, और अन्त में अल्जीरिया गये।

"अल्जीरिया, निस और कान्न के उनके पूरे आवासकाल में मौसम ख़राब रहा। उन्होंने मुझे अल्जीरिया से लम्बे-लम्बे ख़त लिखे। उनमें से अनेक मेरे पास नहीं रहे, क्योंकि उनकी मरज़ी के मुताबिक़ मैं उन पत्रों को जेनी को

भेज देती थी, जिनमें से बहुतेरे मुझे वापस नहीं मिले।

"अन्ततः जब "मूर" घर लौटे, तो उनकी हालत बहुत ख़राब थी और हमें भयानक अनिष्ट की आशंका होने लगी। डॉक्टर की सलाह से उन्होंने पतझड़ और जाड़ा व्हाइट द्वीप के वेण्टनोर नामक स्थान पर बिताया। यहाँ मुझे इस बात का ज़िक्र कर देना चाहिए कि "मूर" की मरज़ी के मुताबिक़ उस समय मैं तीन महीने जेनी के सबसे बड़े लड़के जॉन (जॉनी) के साथ इटली में रही। 1883 के शुरू में मैं जॉनी को साथ लेकर "मूर" के पास पहुँच गयी। जॉनी उनका सबसे चहेता नाती था। फिर मुझे वहाँ से वापस आना पड़ा, क्योंकि मेरी पढ़ाई मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

"तब पड़ी आख़िरी भयानक चोट : जेनी की मौत की ख़बर मिली। "मूर" की प्रथम सन्तान जेनी, उनकी सबसे चहेती बेटी अकस्मात (11 जनवरी को) चल बसी। हमें "मूर" के पत्र मिले थे – वे इस समय मेरे सामने पड़े हैं – जिनमें उन्होंने लिखा था कि जेनी की सेहत सुधर रही थी और हमारे (मेरे और हेलेन के) चिन्तित होने की कोई बात नहीं थी। जिस पत्र में "मूर" ने यह बात लिखी थी, उसके घण्टे ही भर बाद हमें मृत्यु के समाचार का तार मिला। मैं फ़ौरन वेण्टनोर के लिए रवाना हो गयी।

"मेरी ज़िन्दगी में बहुत बार ग़म की घड़ियाँ आयी हैं, लेकिन उस दिन से अधिक ग़मनाक वे कभी नहीं थीं। मुझे महसूस हो रहा था जैसे मैं पिता को मौत की सज़ा सुनाने जा रही हूँ। उस लम्बी चिन्ताकुल यात्रा में मैं लगातार यही सोचती रही कि उन्हें यह ख़बर किस तरह सुनाऊँगी। लेकिन मुझे इसकी ज़रूरत नहीं पड़ी, मेरी सूरत ने ही सबकुछ कह दिया और "मूर" फ़ौरन बोल उठे : 'हमारी जेनी चल बसी!' उसके बाद उन्होंने मुझे फ़ौरन बच्चों के पास पेरिस जाने को कहा। मैं उनके साथ रहना चाहती थी, लेकिन उन्होंने कुछ भी सुनना गवारा नहीं किया। वेण्टनोर में मुश्किल से आधा घण्टा रुककर मैं लन्दन की ग़मनाक यात्रा के लिए चल पड़ी और वहाँ से पेरिस पहुँची। बच्चों के हित में "मूर" ने जो चाहा, मैंने वही किया।

"मैं अपनी घर-वापसी की बाबत कुछ नहीं कहूँगी। उस वक़्त की याद करके मैं काँप उठती हूँ, कैसी व्याकुलता थी, कैसी वेदना! लेकिन नहीं, यह चर्चा बहुत हो चुकी। मैं वापस आयी और "मूर" भी अपनी अन्तिम साँसें लेने के लिए घर लौटे।

"अब प्यारी माँ के बारे में चन्द शब्द और। वे महीनों से घुल रही थीं और कैंसर की सारी भयानक यन्त्रणाएँ झेल रही थीं। लेकिन इसके बावजूद उनकी ख़ुशमिज़ाजी, उनकी अनन्त विनोदप्रियता, जिससे आप भलीभाँति

परिचित हैं, हमेशा बनी रही। वे जर्मनी के चुनावों (1881) के नतीजों की बाबत बच्चे जैसी बेसब्री के साथ पूछती रहीं और जीत पर कितनी अधिक ख़ुश हुईं! वे आख़िरी घड़ी तक ज़िन्दादिल बनी रहीं और मज़ाक़ों से अपने बारे में हमारी चिन्ता दूर करने की कोशिश करती रहीं। जी हाँ, इतनी भयानक पीड़ा भोगती हुई वे मज़ाक़ करती रहीं, हम लोगों के ऊपर और डॉक्टर के ऊपर हँसती रहीं, क्योंकि हम बहुत चिन्तित थे। वे प्रायः अन्तिम क्षण तक होश में रहीं और जब बोलना सम्भव नहीं रह गया – उनके अन्तिम शब्द 'कार्ल' के लिए थे – तब हमारे हाथ अपने हाथों से लेकर मुस्कुराने की कोशिश करती रहीं।

"जहाँ तक "मूर" का सम्बन्ध है, सो तो आप जानते हैं कि वे मेटलैण्ड पार्क में अपने शयनकक्ष से निकलकर अध्ययनकक्ष में अपनी आरामकुर्सी में जा बैठे थे और वहीं शान्तिपूर्वक गुज़र गये थे।

"वह आरामकुर्सी 'जनरल' के पास उनकी मौत के समय तक रही और अब मेरे पास है।

"जब "मूर" के बारे में लिखियेगा, तब हेलेन को न भूलियेगा (माँ को तो आप नहीं ही भूलेंगे, यह मैं जानती हूँ)। हेलेन एक प्रकार से वह धुरी थी, जिसके गिर्द घर में सबकुछ घूमता था। वह श्रेष्ठतम और अधिकतम वफ़ादार दोस्त थी। इसलिए "मूर" के सम्बन्ध में लिखते समय उसे न भूलिएगा!"

* * *

"अब मैं दक्षिण में "मूर" के आवास के सम्बन्ध में कुछ ब्योरे दूँगी, जैसाकि आपने करने को लिखा है। 1882 के शुरू में हम दोनों आर्जेन्त्योए में चन्द हफ़्ते जेनी के साथ रहे। मार्च और अप्रैल में "मूर" अल्जीरिया में थे और मई में मोण्टे-कार्लो, निस और कान्न में। जून के अन्त से जुलाईभर वे फिर जेनी के यहाँ रहे। तब हेलेन भी आर्जेन्त्योए में थी। वहाँ से वे लॉरा के साथ स्विट्ज़रलैण्ड, वेवे इत्यादि गये। सितम्बर के अन्त या अक्टूबर के शुरू में वे ब्रिटेन लौट आये और सीधे वेण्टनोर चले गये, जहाँ जॉनी के साथ मैं उनसे मिलने गयी।

"अब आपके सवालों के जवाब में चन्द टीपें। मेरे ख़्याल में हमारा नन्हा एडगर (मुश) 1847 में पैदा हुआ था और अप्रैल 1855 में गुज़र गया। नन्हा फ़ॉक्स (हैनरिख़) पैदा हुआ था 5 नवम्बर, 1849, को और लगभग दो साल की उम्र में चल बसा था।* मेरी बहन फ्रांसिस्का 1851 में पैदा हुई थी और लगभग ग्यारह महीने की उम्र में ही मर गयी थी।"

* * *

"अब हमारी नेक हेलेन, या 'निम' के बारे में आपके सवालों पर आती हूँ। हम उन्हें आख़िरी दिनों में 'निम' पुकारने लगे थे, क्योंकि न जाने क्यों जॉनी लांगे ने उसे छुटपन में ही यह नाम दे दिया था। वह जब 8 या 9 साल की बच्ची थी, तभी हमारी नानी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन के घर में नौकर हुई थी और "मूर", मेरी माँ और मामा एडगर फ़ॉन वेस्टफ़ॉलेन के साथ-साथ बड़ी हुई थी। वृद्ध फ़ॉन वेस्टफ़ालेन दम्पत्ति के लिए सदा उसके मन में बड़ा अनुराग था। वैसा ही अनुराग "मूर" को भी था। बूढ़े बैरन फ़ॉन वेस्टफ़ालेन, और शेक्सपियर तथा होमर के साहित्य के उनके आश्चर्यजनक ज्ञान की बातें करते वे कभी नहीं अघाते थे। बैरन होमर के पूरे के पूरे गीत आद्योपान्त ज़बानी सुना सकते थे और शेक्सपियर के अधिकतर नाटक उन्हें जर्मन और अंग्रेज़ी दोनों में याद थे। उनसे भिन्न "मूर" के पिता, जिनकी "मूर" बड़ी क़द्र करते थे, सही अर्थ में अठारहवीं शताब्दी के 'फ़्रांसीसी' थे और जिस तरह बूढ़े वेस्टफ़ालेन को होमर और शेक्सपियर याद थे, उसी तरह उन्हें वॉल्तेयर और रूसो याद थे। "मूर" की आश्चर्यजनक बहुमुखी विद्वत्ता निस्सन्देह इन 'वंशागत' प्रभावों के कारण ही थी।

"ख़ैर, अब हेलेन की बात पर लौटें। मैं नहीं कह सकती कि वह मेरे माता-पिता के पास उनके पेरिस जाने (जो उनकी शादी के शीघ्र ही बाद हुआ) के बाद आयी या उससे पहले। मैं केवल इतना ही कह सकती हूँ कि नानी ने इस लड़की को 'जो कुछ वे बेहतरीन भेज सकती थीं' उसी के रूप में 'वफ़ादार और स्नेहमयी' हेलेन को माँ के पास भेजा। और वफ़ादार और स्नेहमयी हेलेन मेरे माता-पिता के साथ बनी रही। बाद में उसकी छोटी बहन मेरिआन्न भी उसके पास आ गयी। इसका तो आपको शायद ही स्मरण हो, क्योंकि यह आपके बाद की बात है..."

17 मार्क्स की समाधि

वास्तव में उसे मार्क्स परिवार की समाधि कहना चाहिए। वह उत्तरी लन्दन के हाईगेट क़ब्रिस्तान में है। यह क़ब्रिस्तान एक पहाड़ी पर है, जहाँ से पूरे विराट नगर की झाँकी मिलती है...

---

* उसका नाम "बारूद षड्यन्त्र" के वीर - गायस फ़ॉक्स के नाम पर रखा गया (लीबनेख़्त का नोट)। 5 नवम्बर, 1605 को षड्यन्त्रकारियों ने, जिनमें गायस फ़ॉक्स भी था, पार्लियामेण्ट की इमारत को - दोनों सदनों के सदस्यों तथा राजा समेत - उड़ाने का इरादा किया। - *स.*

हम सामाजिक-जनवादी पीर-पैग़म्बर नहीं मानते और उनकी समाधियों का भी हमारे लिए कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन करोड़ों लोग साभार और ससम्मान उस व्यक्ति को याद करते हैं, जो उत्तरी लन्दन के उस क़ब्रिस्तान में दफ़्न हैं और हज़ारों साल बाद, जब मज़दूर वर्ग की आज़ादी की तमन्ना के रास्ते में आनेवाली बर्बरता और तंगदिली अतीत की अविश्वसनीय कथाएँ बन जायेंगी, तब आज़ाद और कृतज्ञ लोग इस क़ब्र के पास नंगे सिर खड़े होकर अपने बच्चों से कहेंगे : "यहाँ दफ़्न हैं कार्ल मार्क्स।"

यहाँ दफ़्न हैं कार्ल मार्क्स और उनका परिवार। संगमरमर की समाधि के सिरे पर सिरपेंचे की लता से आच्छादित संगमरमर की एक सादी पटरी तकिए की तरह पड़ी है, जिस पर खुदा है :

जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन
कार्ल मार्क्स की
प्रिय पत्नी
जन्म : 12 फ़रवरी 1814
मृत्यु : 2 दिसम्बर 1881

और **कार्ल मार्क्स**
जन्म : 5 मई 1818, मृत्यु : 14 मार्च 1883
और **हैरी लांगे**
उनका नाती
जन्म : 4 जुलाई 1878, मृत्यु : 20 मार्च 1883
और **हेलेन देमुत**
जन्म : 1 जनवरी 1823, मृत्यु : 4 नवम्बर 1890

पारिवारिक समाधि में परिवार के सभी मृत व्यक्ति दफ़्न नहीं हैं। लन्दन में मरे तीन बच्चे लन्दन के दूसरे क़ब्रिस्तानों में दफ़्न हैं : एडगर (मुश) तो निश्चय ही, और दूसरे दो शायद टोटेनहम कोर्ट रोड पर व्हाइटफ़ील्ड चैपेल के क़ब्रिस्तान में। मार्क्स की चहेती बेटी जेनी पेरिस के पास आर्जेन्त्योए में दफ़्न हैं, जहाँ उन्हें मौत ने उनके फूलते-फलते परिवार से छीन लिया था।

यद्यपि सभी मृत बच्चों और नातियों को पारिवारिक समाधि में जगह नहीं मिली फिर भी "वफ़ादार हेलेन" को, हेलेन देमुत को, मिल गयी, जो ख़ून का रिश्ता न रखते हुए भी परिवार की सदस्य थी।

श्रीमती मार्क्स और उनके बाद ख़ुद मार्क्स ने पहले ही यह फ़ैसला कर लिया था कि उसे पारिवारिक समाधि में ही दफ़नाया जाएगा। एंगेल्स ने, जो हेलेन के समान ही वफ़ादार थे, उस कर्त्तव्य की पूर्ति जीवित बचे बच्चों के साथ मिलकर की, जिसे वे ख़ुद ही अपनी मरज़ी से अंजाम देते।

मार्क्स की सबसे छोटी बेटी द्वारा लिखित और उद्धृत पत्र से प्रकट होता है कि मार्क्स के बच्चे हेलेन को कितना मानते थे, उसे कितना स्नेह करते थे और कितनी निष्ठा के साथ उसकी स्मृति का सम्मान करते थे।

मैं अपनी आख़िरी लन्दन-यात्रा से लौटता हुआ पेरिस से गुज़रा और द्रावेइ गया, जहाँ लफ़ार्ग और उनकी पत्नी लॉरा मार्क्स का एक सुन्दर कॉटेज है। वहाँ लॉरा और मैंने लन्दन की यादों में गोते लगाये और मैंने यह छोटी-सी किताब लिखने का इरादा बताया। लॉरा ने मुझसे ठीक वही बात कही, जो ऊपर उद्धृत किए गये पत्र में तुस्सी ने लिखी और बाद में ज़बानी दुहराई थी : "हेलेन को न भूलिएगा।"

नहीं, मैं हेलेन को नहीं भूला हूँ और नहीं भूलूँगा। वह चालीस साल तक मेरी मित्र रही और लन्दन के उत्प्रवासी जीवन में अनेक बार मेरा "भाग्य" भी बनी। कितनी ही बार उसने मुझे चन्द पेनी देकर उस समय सहायता की, जब मेरी जेब बिल्कुल ख़ाली होती और मार्क्स के घर में बहुत तंगी नहीं होती -

क्योंकि तब तो हेलेन के पास देने को कुछ हो ही नहीं सकता था। और मेरी दर्ज़ीगीरी की कला के जवाब दे जाने पर उसने कितनी ही बार किसी ऐसे आवश्यक वस्त्र की मरम्मत करके उसे चन्द हफ़्ते और चलने योग्य बना दिया था, जिसके बदले नया वस्त्र लेना आर्थिक कारणों से मेरे लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं था।

जब मैं हेलेन से पहली बार मिला, तब वह 27 साल की थी। यह सच है कि वह सुन्दरी नहीं थी, लेकिन अपने लम्बे, सुघड़ शरीर और ख़ुशनुमा चेहरे-मोहरे की बदौलत आकर्षक थी। उसे चाहनेवालों की कमी नहीं थी और अनेक बार ऐसे अवसर आये जब वह अच्छा वर प्राप्त कर सकती थी। लेकिन किसी भी प्रकार की बाध्यता न होते हुए भी उसके अनुरक्त मन के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह "मूर" के साथ, उनकी पत्नी और उनके बच्चों के साथ बनी रहती।

वह उनके साथ ही बनी रही और उसकी जवानी के साल गुज़र गये। वह अभावों और कठिनाइयों में, दुख और सुख में उनके ही साथ रही। उसने उस समय तक विश्राम नहीं जाना, जब तक मौत ने उन लोगों को नहीं छीन लिया, जिनके साथ उसने अपना भविष्य बाँध रखा था। विश्राम मिला उसे एंगेल्स के घर और वहीं उसका अन्त हुआ। अन्तिम घड़ी तक उसने कभी अपनी चिन्ता नहीं की। आज वह पारिवारिक समाधि में दफ़्न है।

* * *

हमारे मित्र मोटेल्लेर, उर्फ़ "लाल डाकमुंशी", जो अब हाईगेट के निकट ही हैम्पस्टेड में रहते हैं, मार्क्स की समाधि के बारे में लिखते हैं :

"मार्क्स की समाधि सफ़ेद संगमरमर की है। काले अक्षरों में नाम और तारीख़ों वाली पटरी भी उसी पत्थर की है। दूब, जिसे मैं स्विट्ज़रलैण्ड से लाया था, सिरपेंचे और गुलाब के चन्द छोटे-छोटे पौधे, बजरियों के बीच से उगी हुई घास - समाधि की बस यही मामूली सजावट है। मैं आमतौर से हफ़्ते में दो बार हाईगेट के क़ब्रिस्तान के पास से गुज़रता हूँ और अगर समाधि पर घास बहुत घनी हो जाती है, तो उसे साफ़ कर देता हूँ। कभी-कभी पानी देना भी ज़रूरी होता है, ख़ासतौर से तब, जब गर्मियाँ पिछली दो गर्मियों जैसी होती हैं (इस साल जबकि शेष यूरोप में इतनी बारिश हुई, ब्रिटेन में ऐसा सूखा पड़ा कि वैसा सूखा शायद ही किसी को याद हो और पार्कों तक में घास पूरी तरह सूख गयी)। लेसनर की मदद से भी मैं समाधि को ताप की तबाही से बचाने में असमर्थ रहा और हमें एवेलिंग परिवार की सहमति से, जो बहुत दूर

रहने के कारण वहाँ बिरले ही जा पाते हैं, समाधि की निगहबानी क़ब्रिस्तान के रखवाले को सौंपनी पड़ी।"

18 पुरानी जगहों पर

इस साल (1896) की मई में अपनी ब्रिटेन यात्रा के समय मैंने यह फ़ैसला किया कि आन्दोलन सम्बन्धी अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के बाद जर्मनी वापस लौटने से पहले शहर के उस हिस्से में जाऊँगा, जहाँ हम उत्प्रवास-काल में रहे थे और विशेष रूप से उन जगहों को देखूँगा, जहाँ मार्क्स परिवार रह चुका था।

8 जून, सोमवार को हम (मैं, एल्योनोरा और उनके पति एवेलिंग) साइडेनहैम के लिए रवाना हुए, ताकि वहाँ से रेलगाड़ी, घोड़ागाड़ी और बस के ज़रिए सोहो स्क्वेयर के पास टोटेनहैम कोर्ट रोड के नुक्कड़ पर पहुँच सकें। वहाँ से हमने अपनी खोज शुरू की। हमने ट्रॉय की खुदाई सम्पन्न करनेवाले श्लीमान की भाँति व्यवस्थित ढंग से यह काम शुरू किया। श्लीमान ट्रॉय को उसी रूप में खोद निकालना चाहते थे, जैसा वह प्रियाम और हेक्टोर के ज़माने में था और इसी तरह हम पाँचवीं दशाब्दी के अन्त से लेकर छठी और सातवीं दशाब्दी तक के उत्प्रवासियों वाले लन्दन को "खोद" निकालना चाहते थे।

तो हम सोहो स्क्वेयर और लिसेस्टर स्क्वेयर से बिल्कुल लगे हुए टोटेनहैम कोर्ट रोड के नुक्कड़ पर पहुँचे, जहाँ जर्मन और फ़्रांसीसी उत्प्रवासी अपनी बेसहारगी के कारण सूत्रबद्ध होकर संकेन्द्रित हो गये थे।

पहले हम सोहो स्क्वेयर पहुँचे। कुछ भी बदला नहीं दिखायी पड़ा। वे ही मकान थे और उन पर धुएँ की वही कालिख छायी हुई थी। यहाँ तक कि साइनबोर्डों पर कई फ़र्मों के वही पुराने नाम भी क़ायम थे... जैसे हम सपना देख रहे हों। जैसे मेरे सामने जवानी के दिन आ खड़े हुए, 40-45 साल की मुद्दत हवा के झोंके से कुहासे की तरह छँट गयी। लगा कि मैं, 25 साल का युवक उत्प्रवासी स्क्वेयर को पार करके एक परिचित कूचे से होकर ओल्ड कॉम्पटन स्ट्रीट की ओर जा रहा हूँ। पुराना मॉडल लॉजिंग-हाउस, जिसमें कोई डेढ़ पीढ़ी पहले हमने बड़ी मस्त और साथ ही दुष्कर ज़िन्दगी बितायी थी, ज्यों का त्यों मौजूद था। मैं तो "लाल वोल्फ़" के अचानक पास से गुज़रने या कोनराद श्राम्म के आकर सामने खड़े हो जाने की भी आशा करने लगा। सबकुछ ऐसा था, जैसेकि मैं अभी कल ही वहाँ से गया होऊँ। कितनी आश्चर्यजनक बात है कि लन्दन में मकानों के उस आवास-समुद्र में ऐसी सड़कें और ऐसे मुहल्ले हैं, जहाँ समय के गुज़रने का आभास नहीं होता, जो

पछाड़ खाती तरंगों से अक्षत रह जाते हैं...

सो, हम आगे बढ़े। सीधे आगे, चर्च स्ट्रीट तक। वह रहा चर्च, अब भी वैसा ही जैसा पहले था और उसके सामने का अपरिहार्य मदिरालय, वह भी नितान्त अपरिवर्तित... और आगे की तरफ दो खिड़कियों वाले वे तिमंज़िले मकान, उनमें भी कोई तब्दीली नहीं। इसी तरह नम्बर 14 भी अपरिवर्तित था, जहाँ मैंने आठ साल गुज़ारे थे।

हम पीछे लौटते हैं और मोड़ से घूम जाते हैं। यह मैक्लसफ़ील्ड स्ट्रीट है। लेकिन नम्बर 6 कहाँ है? उसे यही होना चाहिए था। लेकिन नहीं, उसकी तलाश व्यर्थ है, क्योंकि एक नयी सड़क उस मकान को निगल गयी है। वह मकान अब नहीं है, जिसमें एंगेल्स लन्दन के उत्प्रवासी जीवन के प्रारम्भ से उस समय तक रहे थे, जब तक उनके अनुशासनप्रिय पिता ने पारिवारिक कारोबार की देखभाल के लिए उन्हें मैनचेस्टर नहीं भेज दिया था।

हम और आगे बढ़ते हैं। यह है डीन स्ट्रीट। लेकिन वह मकान कहाँ है, जिसमें मार्क्स अपने परिवार के साथ बरसों रहे थे? मैं एक बार पहले भी उसकी असफल खोज कर चुका था। बाद में मुझे एंगेल्स ने बताया था कि वहाँ मकानों के नम्बर बदल गये हैं। यहाँ एक मकान से दूसरे मकान में भेद कर सकना उतना ही मुश्किल है, जितना दो अण्डों का अन्तर पहचानना और पहले की लन्दन-यात्राओं में मुझे लम्बी तलाश के लिए समय नहीं मिला था। हेलेन भी, जिससे मैंने यह बात उसकी मौत से कुछ ही पहले कही, निश्चय के साथ नहीं कह सकती थी कि वह मकान कौन-सा था। ज़ाहिर है कि तुस्सी को तो यह याद ही कैसे रह सकता था, जो उस समय केवल सालभर की थी, जब परिवार डीन स्ट्रीट से हटकर केण्टिश-टाउन में आ बसा था।

तलाश में व्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ने की ज़रूरत थी। उस सड़क पर बहुत कम तबदीली पैदा हुई थी। ओल्ड कॉम्पटन स्ट्रीट के सिरे पर दाहिने बाज़ू के कई मकानों के बीच हम पसोपेश में पड़ गये। ओल्ड काम्पटन स्ट्रीट के नज़दीक दूसरी दिशा में स्थित एक रंगशाला ही मेरे लिए एक पक्की निशानी थी। उन दिनों कोई कुमारी केली उसकी मालकिन थीं। लेकिन उसे तोड़कर नवनिर्मित किया जा चुका था और अब रॉयलटी थिएटर कहलाता था - पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा और विस्तृत। चूँकि मुझे यह नहीं मालूम था कि उसे दाहिनी तरफ़ या बायीं तरफ़ बढ़ाया गया है, इसलिए मैं अपनी निशानीवाली जगह को सुनिश्चित नहीं कर सकता था। अन्त में मैंने यह फ़ैसला किया कि दो ही मकान हैं जिनमें से एक को चुनना होगा। मकान को बाहर से देखकर अब काम नहीं चल सकता था। मुझे अन्दर जाकर देखने की

ज़रूरत थी। उन दोनों मकानों में से एक का दरवाज़ा खुला था और मैं अन्दर दाख़िल हो गया। मुझे ज़ीने जाने-पहचाने प्रतीत हुए और जहाँ तक दरवाज़े से देखकर अनुमान लगाया जा सकता था, मकान का पूरा ढाँचा भी मेरी याद से मेल खाता हुआ लगा। लेकिन लन्दन के अधिकतर मकान इसी तरह सिलसिलेवार और एक ही साँचे में ढले हुए हैं। उनमें कोई निजी विशेषताएँ नहीं, कोई मौलिकता नहीं। मैं पहली मंज़िल पर गया, जहाँ मुझे कुछ भी परिचित नहीं लगा, कुछ भी पहचान में नहीं आया।

इस बीच मार्क्स की पुत्री और उनके पति इसी सड़क पर और छानबीन कर चुके थे। मैंने उन्हें अपनी छानबीन का अनिश्चित नतीजा बताया।

पास के मकान पर 28 नम्बर लिखा था। क्या मैं उसके अन्दर जाऊँ? अगर मैं भूल नहीं करता, तो मार्क्स के मकान का यही नम्बर था। हाँ! यही नम्बर था, क्योंकि मुझे फ़ौरन याद आया कि लन्दन की अपनी रिहायश के शुरू में ही मैंने उस नम्बर को एक स्मृति-सहायक कौशल द्वारा याद कर लिया था - वह मेरे मकान के नम्बर का दुगुना था। तो, एंगेल्स ने शायद यह कहने में भूल की थी कि वहाँ मकानों के नम्बर बदल गये हैं। यह भी हो सकता है कि ऐसा महज़ उनका अन्दाज़ा ही हो।

हमने दरवाज़े की घण्टी बजायी। एक युवती ने किवाड़ खोले। हमने पूछा कि क्या आपको पहले के किरायेदारों और मकान-मालिक की याद है।

"जी हाँ, लेकिन केवल पिछले नौ साल के ही।"

"क्या मैं अन्दर जाकर मकान को देख सकता हूँ?"

"अवश्य!"

और वह स्वयं मुझे ऊपर ले चली।

सीढ़ियाँ वही थीं। सारी बनावट भी वही थी और मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों हर चीज़ अधिकाधिक परिचित जान पड़ने लगी। पीछे के कमरे की सीढ़ियाँ - सब कुछ जाना-पहचाना!

दुर्भाग्य से दूसरी मंज़िल के कमरे बन्द थे, जिनमें मार्क्स रहे थे। लेकिन जहाँ तक मुझे याद पड़ता था, सब कुछ बिल्कुल सटीक मिलता-जुलता था। मेरे सन्देह एक-एक करके दूर होते गये और अन्त में मुझे पूरा यक़ीन हो गया कि यहीं मार्क्स रहते थे।

जब मैं नीचे आया, तब मैंने पुकारकर कहा : "मैंने पा लिया! यही मकान है, यही!"

यही वह मकान था, जिसमें मैं हज़ारों बार जा चुका था, जिसमें उत्प्रवास के दुख-दैन्य और किसी भी कुत्सा प्रचार करने में न हिचकनेवाले शत्रुओं की

घृणा से अभिभूत, पीड़ित एवं क्लान्त मार्क्स ने अपनी *अठारहवीं ब्रूमेर* और *श्रीमान् फ़ोग्ट* नामक कृतियाँ और *न्यूयॉर्क ट्रिब्यून* के लिए अपने वे संवाद-पत्र लिखे थे, जो अब *क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति* नामक पुस्तक में संगृहीत हैं। यहीं उन्होंने *पूँजी* लिखने की तैयारी का प्रकाण्ड कार्य सम्पन्न किया था...

डीन स्ट्रीट के मकान से रवाना होने के पहले मैं यह बताना चाहता हूँ कि 1849 के अन्त में लन्दन आने पर मार्क्स पहले कैम्बरवेल में रहे। वहाँ मकान-मालिक के दिवालियेपन के कारण कई अप्रिय प्रसंग सामने आये, क्योंकि ब्रिटिश क़ानून के अनुसार लेनदार को अपने क़र्ज़ की वसूली के लिए किरायेदारों का फ़र्नीचर ज़मानत के रूप में ज़ब्त कर लेने का अधिकार है। उसके बाद अल्पकाल तक लिसेस्टर स्क्वेयर के पास एक पारिवारिक होटल में रहकर मार्क्स परिवार मई 1850 में, प्राय: उसी समय जबकि मैं लन्दन आया था, डीन स्ट्रीट पर चला गया था। वे लोग वहाँ कोई सात साल रहे और उसके बाद केण्टिश-टाउन चले गये, जो उस समय अभी लन्दन का अपेक्षाकृत देहाती इलाक़ा था।

अस्तु, अब डीन स्ट्रीट पर हमारे देखने को कुछ भी नहीं रह गया था। इसलिए हम टोटेनहैम कोर्ट रोड के नुक्कड़ पर लौटे और केण्टिश-टाउन के लिए बस पर सवार हो गये।

पर टोटेनहैम कोर्ट रोड भी कुछ अधिक नहीं बदला था। अनेक पुरानी दुकानें और कारोबारी फ़र्में अब भी वहाँ मौजूद थीं, जिससे सड़क का रूप प्राय: पहले जैसा ही था। बायें बाज़ू पर व्हाइटफ़ील्ड-चैपेल ज्यों का त्यों था, हाँ, केवल क़ब्रिस्तान अब बन्द कर दिया गया था। वहीं बेचारा "मुश" दफ़्न है और अगर मैं ग़लती नहीं करता तो वे दूसरे दोनों बच्चे भी दफ़्न हैं, जो बहुत कम उम्र में मर गये थे।

हम केण्टिश-टाउन के नज़दीक पहुँच गये... वह रहा मदिरालय, जो परिचित-सा लगा और वह सचमुच पुराना 'रेड कैप' ही निकला...

हम वहाँ बस से उतरकर माल्डन रोड की ओर मुड़ गये। वहाँ मुझे सब कुछ अपना-सा लगा, लेकिन बहुत देर तक नहीं। शीघ्र ही वे सड़कें दिखायी पड़ीं, जिनका मेरे लन्दन से विदा होते समय अस्तित्व ही नहीं था। जहाँ पहले मैदान थे, वहाँ अब मकान बन गये हैं।

अकस्मात तुस्सी ने एक मकान की ओर संकेत किया, जो लन्दन के उपान्तों की दृष्टि से अपेक्षाकृत बड़ा था। "बस, वही है!"

वास्तव में वही मकान था, जिसमें ग्रैफ़्टन टिर्रेस नामक सड़क पर मार्क्स मरने से 10 साल पहले तक रहे थे। और वह रहा बारजा, जहाँ से सख़्त

चेचक से नीरोग होते समय श्रीमती मार्क्स अपनी तीन छोटी बच्चियों से बातें किया करती थीं, जो उनकी बीमारी के दौरान मेरे साथ रह रही थीं। शुरू-शुरू में वे कमज़ोरी के कारण केवल फुसफुसाकर ही बोल पाती थीं, लेकिन जब मैं बच्चियों को बारजे के निकट लाता था, तो उनका चेहरा किस प्रकार ख़ुशी से चमक उठता था! मकान का नम्बर तब 9 था और अब 46 है।*

वहाँ से थोड़ी ही दूर, मेटलैण्ड पार्क रोड पर, नम्बर 41 है। वहीं मार्क्स की मृत्यु हुई थी। उनका परिवार उस मकान में 1872 या 1873 में गया था। तब दोनों बड़ी लड़कियों की शादी के बाद पहला मकान उनके लिए बहुत बड़ा हो गया था।**

हम चुपचाप चलते हुए हैम्पस्टेड हीथ पहुँचे, जहाँ बहुत कुछ बदल गया है, फिर भी उसका पुराना रूप नितान्त समाप्त नहीं हुआ है। हमने पुरानी जगहों की तलाश की और अन्त में परिचित भटियारख़ाने 'जैक स्ट्रॉ' में नाश्ता-पानी किया, ताकि लम्बी और दुष्कर वापसी यात्रा के लिए शक्ति-संचय कर सकें।

उन पुराने दिनों में हम कितना अक़्सर 'जैक स्ट्रॉ' में जाते थे! हम जिस कमरे में बैठे, ठीक उसी कमरे में मैं मार्क्स, श्रीमती मार्क्स, उनके बच्चों, हेलेन तथा दूसरों के साथ दर्जनों बार बैठ चुका था।

तब से अब तक ज़माना गुज़र चुका है...

---

* तुस्सी के अनुसार एकदम शुरुआत में, या कम से कम तब जब मार्क्स परिवार इसमें रहा करता था, इस मकान का नम्बर 1 था। मुझे लगता है कि उससे कुछ भूल हुई है। किसी भी सूरत में, वास्तविकता का जल्द ही पता चल जायेगा। - *(लीबनेख़्त की टिप्पणी)*

** मार्क्स 9 अक्टूबर, 1856 से अप्रैल 1864 तक 9, ग्रैफ़्टन टेरेस में रहे थे। अप्रैल 1864 से मार्च 1875 तक वह 1, मॉडेना विलाज़, मेटलैण्ड पार्क रोड में रहे थे। इसके बाद मार्च 1875 से मृत्यु के समय तक वह 41, मेटलैण्ड पार्क रोड में रहे। - *स.*

• • •

राहुल
फ़ाउण्डेशन

ISBN 978-93-80303-29-1
मूल्य : रु. 35.00

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र
2018

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर-घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुँचाना होगा।

दो दशक पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी-सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी-सी दुकान और फ़ुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी-छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर-घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम - शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। एक बड़े और एक छोटे प्रदर्शनी वाहन के माध्यम से जनचेतना हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला-सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन-संघर्ष-सृजन-प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइये, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिये।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1.	**तरुणाई का तराना**/याङ मो		...
2.	**तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट		...
3.	**माँ**/मक्सिम गोर्की		...
4.	**वे तीन**/मक्सिम गोर्की		75.00
5.	**मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की		...
6.	**जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की		...
7.	**मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की		...
8.	**फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की		55.00
9.	**अभागा**/मक्सिम गोर्की		40.00
10.	**बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की		25.00
11.	**असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई		...
12.	**तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव	(दो खण्डों में)	160.00
13.	**गोदान**/प्रेमचन्द		...
14.	**निर्मला**/प्रेमचन्द		...
15.	**पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र		...
16.	**चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र		...
17.	**गृहदाह**/शरत्चन्द्र		70.00
18.	**शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र		...
19.	**इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का		65.00
20.	**इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव		20.00
21.	**दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव		70.00

22. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
23. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
24. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव 30.00
25. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
26. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
27. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
28. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00
29. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय 30.00
30. **Mother**/*Maxim Gorky* 250.00
31. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00
2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

3. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) ...
6. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 10.00
7. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** ...

अन्तोन चेख़व

8. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
10. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...
11. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00
12. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...
13. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00
14. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
15. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
16. **वसन्तागम**/रओ शि 50.00

17. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
18. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
19. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
20. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
21. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
22. **समय के पंख**/कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
23. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
24. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
25. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
26. **दोन की कहानियाँ**/मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
27. **अब इन्साफ़ होने वाला है** ...
    (भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)
    (ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/स. **शकील सिद्दीक़ी**
28. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
29. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/मदन मोहन 35.00

कविताएँ

1. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा 60.00
2. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्स्टन ह्यूज 60.00
3. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) 160.00
4. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00
5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ - बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**
   (मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
   (ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित) 150.00
6. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00
7. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00
8. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00
9. **ओस की बूँदें और लाल गुलाब**/होसे मारिया सिसों 25.00

10. **इन्तिफ़ादा :** फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय ...
11. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश ...
12. **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :** फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)
A Rose Breaking Out of Steel and Blood (Palestinian Poems) 60.00
13. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00
14. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे 60.00
15. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00
16. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी 50.00
17. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी 50.00
18. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश 50.00
19. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00
20. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 125.00
21. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी 60.00
22. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 200.00
23. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00
24. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00
25. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00
26. **यह जो वक्त है**/कपिलेश भोज 60.00
27. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...
28. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर 60.00
29. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00
30. **देखते न देखते**/मलय 65.00
31. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00
32. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00
33. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00
34. **तो**/शैलेय 75.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00

3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री-विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी (पेपरबैक) 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यन्त्ररत मृतात्माओं के बीच**
   (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य-विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/
   गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/
   बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00

5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुख़ोम्लीन्स्की ...

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**/कात्यायनी, सत्यम 25.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये
वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये
वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फोन: 9936650658, 8853093555
वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com
वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1.	**नौजवानों से दो बातें**/पीटर क्रोपोटकिन	15.00
2.	**क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/भगतसिंह	15.00
3.	**मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह	15.00
4.	**बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह	15.00
5.	**जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह	15.00
6.	**भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह	15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1.	**भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़**/स. सत्यम	350.00
2.	**शहीदेआज़म की जेल नोटबुक**/भगतसिंह	100.00
3.	**विचारों की सान पर**/भगतसिंह	50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1.	**बहरों को सुनाने के लिए**/एस. इरफ़ान हबीब (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम)	...
2.	**क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा	15.00
3.	**भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र	20.00
4.	**यश की धरोहर**/ भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर	50.00
5.	**संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा	80.00
6.	**शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/स. डॉ. हरदीप सिंह	40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है**
   ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 60.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 60.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 10.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 15.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 15.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 15.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 15.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 10.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00

3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की 5.00
4. **मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00
6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 15.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 5.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** 30.00
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 10.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** ...
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** ...
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 75.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह 100.00

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स 100.00
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/मार्क्स-एंगेल्स 25.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उज़रती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00

11.	**जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	30.00
12.	**समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	...
13.	**पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन	15.00
14.	**एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन	60.00
15.	**जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन	25.00
16.	**समाजवाद और युद्ध**/लेनिन	20.00
17.	**साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन	30.00
18.	**राज्य और क्रान्ति**/लेनिन	40.00
19.	**सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन	15.00
20.	**दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन	15.00
21.	**गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन	...
22.	**मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन	20.00
23.	**कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन	20.00
24.	**क्या करें?**/लेनिन	...
25.	**"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन	...
26.	**पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन	15.00
27.	**जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन	70.00
28.	**धर्म के बारे में**/लेनिन	20.00
29.	**तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन	10.00
30.	**मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ**/जी. प्लेख़ानोव	30.00
31.	**जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव	35.00
32.	**लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन	50.00
33.	**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास**	90.00
34.	**माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में)	...
35.	**कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ	...
36.	**सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/माओ त्से-तुङ	35.00
37.	**दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/माओ त्से-तुङ	70.00
38.	**कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़** / माओ त्से-तुङ	15.00
39.	**माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण**	50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

1.	**राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** नयी	300.00
2.	**खुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र	300.00
3.	**राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी)	160.00
4.	**पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग	10.00
5.	**कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/डी. रियाज़ानोव (विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)	100.00
6.	**द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/डेविड गेस्ट	...
7.	**महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति : चुने हुए दस्तावेज़ और लेख** (खण्ड 1)	35.00
8.	**इतिहास ने जब करवट बदली**/विलियम हिण्टन	25.00
9.	**द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/वी. अदोरात्स्की	50.00
10.	**अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन**/अल्बर्ट रीस विलियम्स (महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)	90.00
11.	**सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस	50.00

राहुल साहित्य

1.	**तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन	40.00
2.	**दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन	...
3.	**वैज्ञानिक भौतिकवाद**/राहुल सांकृत्यायन	65.00
4.	**राहुल निबन्धावली**/राहुल सांकृत्यायन	50.00
5.	**स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन	150.00

परम्परा का स्मरण

1.	**चुनी हुई रचनाएँ**/गणेशशंकर विद्यार्थी	100.00
2.	**सलाखों के पीछे से**/गणेशशंकर विद्यार्थी	30.00
3.	**ईश्वर का बहिष्कार**/राधामोहन गोकुलजी	30.00
4.	**लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी	20.00
5.	**धर्म का ढकोसला**/राधामोहन गोकुलजी	30.00
6.	**स्त्रियों की स्वाधीनता**/राधामोहन गोकुलजी	30.00

जीवनी और संस्मरण

1.	**कार्ल मार्क्स जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स	25.00
2.	**फ़्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स	...
3.	**कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख**	...
4.	**अदम्य बोल्शेविक नताशा** (एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/एल. काताशेवा	30.00
5.	**लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा	70.00
6.	**लेनिन विषयक कहानियाँ**	75.00
7.	**लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/लीदिया फ़ोतियेवा	...
8.	**स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन	150.00

विविध

1.	**फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक	30.00
2.	**पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर	100.00
3.	**सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर	....

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय

बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर,
दिल्ली-110094

एक प्रति : 20 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1.	**A Contribution to the Critique of Political Economy**	100.00
2.	**The Civil War in France**	80.00
3.	**The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte**	40.00
4.	**Critique of the Gotha Programme**	25.00
5.	**Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy**	25.00
6.	**The Poverty of Philosophy**	80.00
7.	**Wages, Price and Profit**	35.00
8.	**Class Struggles in France**	50.00

FREDERICK ENGELS

9.	**The Peasant War in Germany**	70.00
10.	**Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy**	65.00
11.	**On Capital**	55.00
12.	**The Origin of the Family, Private Property and the State**	100.00
13.	**Socialism: Utopian and Scientific**	60.00
14.	**On Marx**	20.00
15.	**Principles of Communism**	5.00

MARX and ENGELS

16.	**Historical Writings** (Set of 2 Vols.)	700.00
17.	**Manifesto of the Communist Party**	50.00
18.	**Selected Letters**	40.00

V. I. LENIN

19.	**Theory of Agrarian Question**	160.00
20.	**The Collapse of the Second International**	25.00
21.	**Imperialism, the Highest Stage of Capitalism**	80.00
22.	**Materialism and Empirio-Criticism**	150.00

23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00
24. **Capitalism and Agriculture** 30.00
25. **A Characterisation of Economic Romanticism** 50.00
26. **On Marx and Engels** 35.00
27. **"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder** 40.00
28. **Party Work in the Masses** 55.00
29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 40.00
30. **One Step Forward, Two Steps Back** …
31. **The State and Revolution** …

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat, *Questions and Answers*** 50.00
33. **On the Dictatorship of the Proletariat: *Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** 35.00

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00
36. **Anarchism or Socialism?** 25.00
37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** 30.00
38. **On Organisation** 15.00
39. **The Foundations of Leninism** 40.00
40. **The Essential Stalin** *Major Theoretical Writings 1905–52* 175.00 (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** …

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 50.00
43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00
44. **On Literature and Art** 80.00

45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** …

46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** …

OTHER MARXISM

1. **Political Economy,** ***Marxist Study Courses***
   (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 275.00
2. **Fundamentals of Political Economy**
   (The Shanghai Textbook) 160.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/
   Howard Selsam & Harry Martel …
4. **Socialism and Ethics**/*Howard Selsam* …
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction**)/**
   Howard Selsam 75.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics**/*Maurice Cornforth* 70.00
7. **From Marx to Mao Tse-tung /**George Thomson …
8. **Capitalism and After/**George Thomson …
9. **The Human Essence/**George Thomson 65.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions**/*Bob Avakian* 125.00
11. **A Basic Understanding of the Communist Party**
    (Written during the GPCR in China) 150.00
12. **The Lessons of the Paris Commune/**
    Alexander Trachtenberg (Illustrated) 15.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) …
2. **Karl Marx And Frederick Engels:**
   An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov …
3. **Joseph Stalin: A Political Biography**
   by The Marx-Engels-Lenin Institute …

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle (Red Papers 7)** 175.00

2. **Preface of Class Struggles in the USSR** /
Charles Bettelheim 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** /
Alok Ranjan 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** /
Shashi Prakash 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University / *William Hinton* ...
2. **The Cultural Revolution at Peking University** /
Victor Nee with *Don Layman* 30.00
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** / *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** / *William Hinton* ...
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** / *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution** / *Iris Hunter* ...

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969 / *Joshua S. Horn* ...
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China /*Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* ...
3. **Philosophy is No Mystery**
(Peasants Put Their Study to Work) 35.00

CONTEMPORARY ISSUES

1. **Caste and Class: A Marxist Viewpoint** /
Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles** /
Deepayan Bose 15.00

2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism?** / *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?**
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality** / *Alok Ranjan* 15.00

BIGUL REPRINT SERIES

1. **Still Ablaze is the Torch of October Revolution** 20.00
2. **Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan 75.00

WOMEN QUESTION

1. **The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin* ...
2. **Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** /*Mary Lou Greenberg*...

MISCELLANEOUS

1. **Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin* ...
2. **An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin* 15.00

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार

मज़दूर बिगुल

एक प्रति : 5 रुपये
वार्षिक : 70 रुपये
(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड,
निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-4108495
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
वेबसाइट : **mazdoorbigul.net**

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलनः निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
   (द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलनः दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
   (तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद**
   (चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना

एक वैचारिक मुहिम है
भविष्य-निर्माण का एक प्रोजेक्ट है
वैकल्पिक मीडिया की एक सशक्त धारा है।

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फ़ाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास, शहीद भगतसिंह यादगारी प्रकाशन, दस्तक प्रकाशन और प्रांजल आर्ट पब्लिशर्स की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्रोतों - सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अनुराग ट्रस्ट

1.	**बच्चों के लेनिन**	35.00
2	**Stories About Lenin**	35.00
3.	**सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर	25.00
4.	**औज़ारों की कहानियाँ**	20.00
5.	**गुड़ की डली**/कात्यायनी	20.00
6.	**फूल कुंडलाकार क्यों होते हैं**/सनी	20.00
7.	**धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव	120.00
8.	**कजाकी**/प्रेमचन्द	35.00
9.	**नीला प्याला**/अरकादी गैदार	40.00
10.	**गड़रिये की कहानियाँ**/क़यूम तंगरीकुलीयेव	35.00
11.	**चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/अ. मित्यायेव	35.00
12.	**अन्धविश्वासी शेकी टेल**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
13.	**चलता-फिरता हैट**/एन. नोसोव, होल्कर पुक्क	20.00
14.	**चालाक लोमड़ी** (लोककथा)	20.00
15.	**दियांका-टॉमचिक**	20.00
16.	**गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
17.	**गुफा मानवों की कहानियाँ**/मैरी मार्स	...
18.	**हम सूरज को देख सकते हैं**/मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच	20.00
19.	**मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
20.	**नन्हे आर्थर का सूरज**/हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा	20.00
22.	**आकाश में मौज-मस्ती**/चिनुआ अचेबे	20.00
23.	**ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन	40.00
24.	**एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की	20.00
25.	**बहादुर**/अमरकान्त	15.00
26.	**बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/शस्या हर्ष	...

27. **दान्को का जलता हुआ हृदय**/मक्सिम गोर्की 15.00
28. **नन्हा राजकुमार**/आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी 40.00
29. **दादा आर्खिप और ल्योंका**/मक्सिम गोर्की 30.00
30. **सेमागा कैसे पकड़ा गया**/मक्सिम गोर्की 15.00
31. **बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की 15.00
32. **वांका**/अन्तोन चेख़व 15.00
33. **तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
34. **पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर ...
35. **काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 20.00
36. **अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र 15.00
37. **दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर 25.00
38. **रामलीला**/प्रेमचन्द 15.00
39. **दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द 25.00
40. **ईदगाह**/प्रेमचन्द ...
41. **लॉटरी**/प्रेमचन्द 20.00
42. **गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द ...
43. **बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द 20.00
44. **मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द ...
45. **हार की जीत**/सुदर्शन ...
46. **इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
47. **चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन 55.00
48. **उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर 35.00
49. **हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव 25.00
50. **दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) ...
51. **आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल
(नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 30.00
52. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा
(नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 35.00
53. **नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन ...
54. **लाखी**/अन्तोन चेख़व 25.00
55. **बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव 12.00

56.	**हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक	25.00
57.	**घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव	10.00
58.	**बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव	20.00
59.	**मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन	35.00
60.	**पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की	20.00
61.	**कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय	30.00
62.	**मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव	30.00
63.	**सदानन्द की छोटी दुनिया**/सत्यजीत राय	15.00
64.	**छत पर फँस गया बिल्ला**/विताउते जिलिन्सकाइते	35.00
65.	**गोलू के कारनामे**/रामबाबू	25.00
66.	**दो साहसिक कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	15.00
67.	**आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
68.	**कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क	20.00
69.	**रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
70.	**अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क	...
71.	**नये ज़माने की परीकथाएँ**/होल्गर पुक्क	25.00
72.	**किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन	15.00
73.	**पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन)/ कमला पाण्डेय	30.00
74.	**यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण)/ कमला पाण्डेय	100.00
75.	**हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ)/ कमला पाण्डेय	60.00
76.	**कालमन्थन** (उपन्यास)/ कमला पाण्डेय	60.00

कोंपल

बच्चों के समग्र वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिए समर्पित अनुराग ट्रस्ट की त्रैमासिक पत्रिका

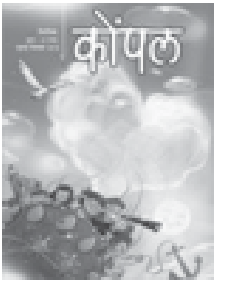

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020

एक प्रति : 20 रुपये,
वार्षिक : 100 रुपये (डाकव्यय सहित)

ਪੰਜਾਬੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਦਸਤਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ ਦਾ ਸਵੈ-ਜੀਵਨੀ ਨਾਵਲ (ਤਿੰਨ ਭਾਗਾਂ ਵਿੱਚ)

1. ਮੇਰਾ ਬਚਪਨ	130.00
2. ਮੇਰੇ ਵਿਸ਼ਵ-ਵਿਦਿਆਲੇ	100.00
3. ਮੇਰੇ ਸ਼ਗਿਰਦੀ ਦੇ ਦਿਨ	200.00
4. ਪ੍ਰੇਮ, ਪ੍ਰੰਪਰਾ ਅਤੇ ਵਿਦਰੋਹ / ਕਾਤਿਆਈਨੀ	20.00
5. ਥੀਏਟਰ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਤਰਕਸ਼ਾਸਤਰ / ਬ੍ਰੈਖ਼ਤ	15.00
6. ਆਈਜੇਂਸਤਾਈਨ ਦਾ ਫਿਲਮ ਸਿਧਾਂਤ	15.00
7. ਮਜ਼ਦੂਰ ਜਮਾਤੀ ਸੰਗੀਤ ਰਚਨਾਵਾਂ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ	10.00
8. ਪਹਿਲਾ ਅਧਿਆਪਕ / ਚੰਗੇਜ਼ ਆਇਤਮਾਤੋਵ (ਨਾਵਲ)	25.00
9. ਸ਼ਾਂਤ ਸਰਘੀ ਵੇਲਾ / ਬੋਰਿਸ ਵਾਸੀਲਿਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
10. ਭਾਂਜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਫ਼ਦੇਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	100.00
11. ਫੌਲਾਦੀ ਹੜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਸਰਾਫ਼ੀਮੋਵਿਚ (ਨਾਵਲ)	100.00
12. ਇਕਤਾਲ਼ੀਵਾਂ / ਬੋਰਿਸ ਲਵਰੇਨਿਓਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
13. ਮਾਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ (ਨਾਵਲ)	180.00
14. ਪੀਲ਼ੇ ਦੈਂਤ ਦਾ ਸ਼ਹਿਰ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	80.00
15. ਸਾਹਿਤ ਬਾਰੇ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	200.00
16. ਅਸਲੀ ਇਨਸਾਨ ਦੀ ਕਹਾਣੀ / ਬੋਰਿਸ ਪੋਲੇਵਾਈ (ਨਾਵਲ)	200.00
17. ਅੱਠੇ ਪਹਿਰ (ਕਹਾਣੀਆਂ)	125.00
18. ਬਘਿਆੜਾਂ ਦੇ ਵੱਸ / ਬਰੁਨੋ ਅਪਿਤਜ (ਨਾਵਲ)	100.00
19. ਮੀੜ੍ਹਿਆ ਕੌਕੋਰ / ਮੀਹਾਇਲ ਸਾਦੋਵਿਆਨੋ (ਨਾਵਲ)	100.00
20. ਇਨਕਲਾਬ ਲਈ ਜੂਝੀ ਜਵਾਨੀ	150.00
21. ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਦਿਆਂ ਦਿਲ ਆਪਣਾ ਮੈਂ / ਵ. ਸੁਖੋਮਲਿੰਸਕੀ	150.00
22. ਫਾਸੀ ਦੇ ਤਖ਼ਤੇ ਤੋਂ / ਜੂਲੀਅਸ ਫੂਚਿਕ (ਨਾਵਲ)	50.00
23. ਭੁੱਬਲ / ਫ਼ਰੰਜ਼ਦ ਅਲੀ (ਪਾਕਿਸਤਾਨੀ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਨਾਵਲ)	200.00
24. ਸਭ ਤੋਂ ਖਤਰਨਾਕ... (ਪਾਸ਼ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਉਪਲੱਬਧ ਸ਼ਾਇਰੀ)	200.00
25. ਧਰਤੀ ਧਨ ਨਾ ਆਪਣਾ / ਜਗਦੀਸ਼ ਚੰਦਰ	250.00

ਸ਼ਹੀਦ ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਯਾਦਗਾਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

1. ਉਜਰਤ, ਕੀਮਤ ਅਤੇ ਮੁਨਾਫਾ / ਮਾਰਕਸ	30.00
2. ਉਜਰਤੀ ਕਿਰਤ ਅਤੇ ਸਰਮਾਇਆ / ਮਾਰਕਸ	20.00
3. ਸਿਆਸੀ ਆਰਥਿਕਤਾ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ ਵਿੱਚ ਯੋਗਦਾਨ / ਮਾਰਕਸ	125.00
4. ਲੂਈ ਬੋਨਾਪਾਰਟ ਦੀ ਅਠਾਰਵੀਂ ਬਰੂਮੇਰ / ਮਾਰਕਸ	50.00
5. ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਉਤਪਤੀ / ਮਾਰਕਸ	45.00
6. ਰਿਹਾਇਸ਼ੀ ਘਰਾਂ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
7. ਫਿਊਰਬਾਖ : ਪਾਦਰਥਵਾਦੀ ਅਤੇ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ / ਮਾਰਕਸ-ਏਂਗਲਜ਼	60.00
8. ਜਰਮਨੀ ਵਿੱਚ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ / ਏਂਗਲਜ਼	50.00
9. ਮਾਰਕਸ ਦੇ "ਸਰਮਾਇਆ" ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	60.00
10. ਫਰਾਂਸ ਅਤੇ ਜਰਮਨੀ 'ਚ ਕਿਸਾਨੀ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	20.00
11. ਸੋਸ਼ਲਿਜ਼ਮ : ਵਿਗਿਆਨਕ ਅਤੇ ਯੂਟੋਪੀਆਈ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
12. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	10.00
13. ਲੁਡਵਿਗ ਫਿਊਰਬਾਖ ਅਤੇ ਕਲਾਸੀਕੀ ਜਰਮਨ ਦਰਸ਼ਨ ਦਾ ਅੰਤ / ਏਂਗਲਜ਼	30.00
14. ਟੱਬਰ, ਨਿੱਜੀ ਜਾਇਦਾਦ ਅਤੇ ਰਾਜ ਦੀ ਉੱਤਪਤੀ / ਏਂਗਲਜ਼	65.00
15. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਉਨਾਂ ਦੀ ਸਿੱਖਿਆ / ਲੈਨਿਨ	35.00
16. ਰਾਜ ਅਤੇ ਇਨਕਲਾਬ / ਲੈਨਿਨ	50.00
17. ਦੂਜੀ ਇੰਟਰਨੈਸ਼ਨਲ ਦਾ ਪਤਣ / ਲੈਨਿਨ	45.00
18. ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦ / ਲੈਨਿਨ	15.00
19. ਰਾਜ / ਲੈਨਿਨ	10.00
20. ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ, ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਦਾ ਸਰਵਉੱਚ ਪੜਾਅ / ਲੈਨਿਨ	70.00
21. ਇੱਕ ਕਦਮ ਅੱਗੇ ਦੋ ਕਦਮ ਪਿੱਛੇ / ਲੈਨਿਨ	125.00
22. ਲੋਕਾਂ ਵਿੱਚ ਕੰਮ ਕਿਵੇਂ ਕਰੀਏ / ਲੈਨਿਨ	65.00
23. ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਕਲਾ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ	150.00
24. ਸਮਾਜਵਾਦ ਅਤੇ ਜੰਗ / ਲੈਨਿਨ	45.00
25. ਖੱਬੇ ਪੱਖੀ ਕਮਿਊਨਿਜ਼ਮ ਇੱਕ ਬਚਗਾਨਾ ਰੋਗ / ਲੈਨਿਨ	65.00
26. ਅਸੀਂ ਜਿਹੜਾ ਵਿਰਸਾ ਤਿਆਗਦੇ ਹਾਂ / ਲੈਨਿਨ	25.00
27. ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਭਗੌੜਾ ਕਾਊਤਸਕੀ / ਲੈਨਿਨ	70.00
28. ਆਰਥਕ ਰੋਮਾਂਚਵਾਦ ਦਾ ਚਰਿੱਤਰ ਚਿੱਤਰਣ / ਲੈਨਿਨ	50.00

29. ਸੁਤੰਤਰ ਵਪਾਰ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਮਾਰਕਸ, ਏਂਗਲਜ਼, ਲੈਨਿਨ	10.00
30. ਲੈਨਿਨਵਾਦ ਦੀਆਂ ਨੀਹਾਂ / ਸਟਾਲਿਨ	20.00
31. ਫ਼ਲਸਫਾਨਾ ਲਿਖਤਾਂ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	25.00
32. ਸੋਵੀਅਤ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	60.00
33. ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਦੇ ਬੁਨਿਆਦੀ ਮਸਲੇ / ਪਲੈਖਾਨੋਵ	40.00
34. ਰਾਜਨੀਤਕ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੇ ਮੂਲ ਸਿਧਾਂਤ	60.00
35. ਫਿਲਾਸਫੀ ਕੋਈ ਗੋਰਖਧੰਦਾ ਨਹੀਂ	10.00
36. ਦਵੈਂਦਵਾਦ ਜ਼ਰੀਏ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸੇਵਾ	10.00
37. ਇਤਿਹਾਸ ਨੇ ਜਦ ਕਰਵਟ ਬਦਲੀ	40.00
38. ਇਨਕਲਾਬ ਅੰਦਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
39. ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ ਦੀ ਅਮਿੱਟ ਦੇਣ	125.00
40. ਚੀਨ ਵਿੱਚ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਮਾਓ ਦਾ ਇਨਕਲਾਬੀ ਵਿਰਸਾ	60.00
41. ਮਾਓਵਾਦੀ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜਵਾਦ ਦਾ ਭਵਿੱਖ	60.00
42. ਲੈਨਿਨ ਦੀ ਜੀਵਨ ਕਹਾਣੀ	100.00
43. ਅਡੋਲ ਬਾਲਸ਼ਵਿਕ ਨਤਾਸ਼ਾ	30.00
44. ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਏਂਗਲਜ਼ ਆਪਣੇ ਸਮਕਾਲੀਆਂ ਦੀਆਂ ਨਜ਼ਰਾਂ ਵਿੱਚ	75.00
45. ਪੈਰਿਸ ਕਮਿਊਨ ਦੀ ਅਮਰ ਕਹਾਣੀ	10.00
46. ਬੁਝ ਨਹੀਂ ਸਕਦੀ ਅਕਤੂਬਰ ਇਨਕਲਾਬ ਦੀ ਮਸ਼ਾਲ	10.00
47. ਦਹਿਸ਼ਤਗਰਦੀ ਬਾਰੇ ਭਰਮ ਅਤੇ ਯਥਾਰਥ	10.00
48. ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਕਿਸਾਨ ਅੰਦੋਲਨ ਅਤੇ ਕਮਿਊਨਿਸਟ ਲਹਿਰ	10.00
49. ਜੰਗਲਨਾਮਾ : ਇੱਕ ਰਾਜਨੀਤਕ ਪੜਚੋਲ	10.00
50. ਭਾਰਤੀ ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ	20.00
51. ਅਮਿੱਟ ਹਨ ਮਜ਼ਦੂਰ ਸੰਗਰਾਮਾਂ ਦੀਆਂ ਚਿਣਗਾਂ	10.00
52. ਸਮਾਜਵਾਦ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ, ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੀ ਮੁੜ ਬਹਾਲੀ ਅਤੇ ਮਹਾਨ ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
53. ਕਿਉਂ ਮਾਓਵਾਦ ?	10.00
54. ਸੋਵੀਅਤ ਯੂਨੀਅਨ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਬਾਰੇ ਪ੍ਰਚਾਰੇ ਜਾਂਦੇ ਝੂਠ	10.00
55. ਰਿਜ਼ਰਵੇਸ਼ਨ : ਪੱਖ, ਵਿਪੱਖ ਅਤੇ ਤੀਸਰਾ ਪੱਖ	5.00
56. ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਅਤੇ ਜਾਤ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	20.00

57. ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਬਾਰੇ ਅੰਬੇਡਕਰ ਦੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 15.00
58. ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ ਅਤੇ ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 15.00
59. ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ : ਜੀਵਨ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 10.00
60. ਭਾਰਤ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚ ਜਾਤ-ਪਾਤ / ਪ੍ਰੋ. ਇਰਫ਼ਾਨ ਹਬੀਬ 10.00
61. ਉਦਾਰਵਾਦੀ ਨੀਤੀਆਂ ਦੇ 18 ਸਾਲ 5.00
62. ਚੋਰ, ਭ੍ਰਿਸ਼ਟ ਅਤੇ ਅਯਾਸ਼ ਨੇਤਾਸ਼ਾਹੀ 5.00
63. ਪਾਪ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨ / ਡਾਈਸਨ ਕਾਰਟਰ 60.00
64. ਫਾਸੀਵਾਦ ਕੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਨਾਲ਼ ਕਿਵੇਂ ਲੜੀਏ ? 15.00
65. ਆਈਨਸਟੀਨ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਰੋਕਾਰ 10.00
66. ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਨਾਲ਼ ਦੋ ਗੱਲਾਂ / ਪੀਟਰ ਕ੍ਰੋਪੋਟਕਿਨ 10.00
67. ਇਨਕਲਾਬ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ
(ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਸਾਥੀਆਂ ਦੀਆਂ ਲਿਖਤਾਂ) 30.00
68. ਅਜਿਹਾ ਸੀ ਸਾਡਾ ਭਗਤ ਸਿੰਘ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ 10.00
69. ਮੈਂ ਨਾਸਤਿਕ ਕਿਉਂ ਹਾਂ ? / ਭਗਤ ਸਿੰਘ 10.00
70. ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਨੇ ਕਿਹਾ... / ਭਗਤ ਸਿੰਘ 5.00
71. ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਤੇ ਉਸਦੇ ਸਾਥੀਆਂ
ਦਾ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਵਿਕਾਸ / ਪ੍ਰੋ. ਬਿਪਨ ਚੰਦਰਾ 10.00
72. ਇਨਕਲਾਬੀ ਲਹਿਰ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤਕ ਵਿਕਾਸ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ 10.00
73. ਸ਼ਹੀਦ ਚੰਦਰ ਸ਼ੇਖਰ ਆਜ਼ਾਦ / ਭਗਵਾਨ ਦਾਸ ਮਹੌਰ 10.00
74. ਗਦਰੀ ਸੂਰਬੀਰ / ਪ੍ਰੋ. ਰਣਧੀਰ ਸਿੰਘ 10.00
75. ਸ਼ਹੀਦ ਸੁਖਦੇਵ 20.00
76. ਸ਼ਹੀਦ ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਸਰਾਭਾ 5.00
77. ਵਿਦਿਆਰਥੀ ਨੌਜਵਾਨ ਨਵੀਂ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕਿੱਥੋਂ ਕਰਨ ? 10.00
78. ਸੋਧਵਾਦ ਬਾਰੇ 5.00
79. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਸਾਰ ਦੀ ਲੋੜ ਕਿਉਂ ? / ਸੁਖਵਿੰਦਰ 15.00
80. ਵਧਦੀ ਅਬਾਦੀ 15.00
81. ਯੁੱਗ ਕਿਵੇਂ ਬਦਲਦੇ ਹਨ ? / ਡਾ. ਅੰਮ੍ਰਿਤ 10.00
82. ਧਰਮ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ 30.00
83. ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਮਾਤ-ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਮਹੱਤਵ 20.00
84. ਇੱਕ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਦਾ ਜਨਮ / ਗੈਨਰਿਖ ਵੋਲਕੋਵ 100.00
85. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਨਵਉਦਾਰਵਾਦ ਦੇ ਦੋ ਦਹਾਕੇ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ 20.00

86. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਦਾ ਕਲਾ ਦਰਸ਼ਨ 200.00
87. ਸਤਾਲਿਨ - ਇੱਕ ਜੀਵਨੀ / ਰਾਹੁਲ ਸਾਂਕਰਤਾਇਨ 150.00
88. ਪੋਰਨੋਗ੍ਰਾਫੀ : ਇਕ ਸਰਮਾਏਦਾਰਾ ਕੋਹੜ / ਅਜੇ ਪਾਲ 10.00
89. ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਗੁਲਾਮੀ ਦਾ ਆਰਥਿਕ ਅਧਾਰ / ਸੀਤਾ 10.00

ਅਨੁਰਾਗ ਟਰੱਸਟ (ਬੱਚਿਆਂ ਲਈ)

1. ਇਵਾਨ / ਵਲਾਦੀਮੀ ਬਗਾਮਲੋਵ 35.00
2. ਵਾਂਕਾ / ਅਨਤੋਨ ਚੈਖੋਵ 10.00
3. ਕਿਸਮਤ ਆਪੋ-ਆਪਣੀ / ਜੈਨੇਂਦਰ 20.00
4. ਕੋਹੇਕਾਫ਼ ਦਾ ਕੈਦੀ / ਤਾਲਸਤਾਏ 30.00
5. ਛੱਤ 'ਤੇ ਫਸ ਗਿਆ ਬਿੱਲਾ ਅਤੇ ਹੋਰ ਕਹਾਣੀਆਂ 20.00
6. ਅਜੀਬੋ-ਗਰੀਬ ਕਿੱਸੇ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 20.00
7. ਦੋ ਹਿੰਮਤੀ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 15.00
8. ਨਵੇਂ ਜ਼ਮਾਨੇ ਦੀਆਂ ਪਰੀ-ਕਥਾਵਾਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 20.00
9. ਅਸੀਂ ਸੂਰਜ ਨੂੰ ਵੇਖ ਸਕਦੇ ਹਾਂ / ਮਿਕੋਲ ਗਿੱਲ 10.00
10. ਗੁਫਾ ਮਾਨਵਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਮੈਰੀ ਮਾਰਸ 20.00
11. ਕਿੱਸਾ ਇਹ ਕਿ ਇੱਕ ਪੇਂਡੂ ਨੇ ਦੋ ਅਫ਼ਸਰ ਸ਼ਹਿਰੀ ਅਫਸਰਾਂ ਦਾ ਢਿੱਡ ਕਿਵੇਂ ਭਰਿਆ / ਮਿਖਾਈਲ ਸ਼ਚੇਦ੍ਰਿਨ 15.00
12. ਸਦਾਨੰਦ ਦੀ ਛੋਟੀ ਦੁਨੀਆਂ / ਸੱਤਿਆਜੀਤ ਰਾਏ 10.00
13. ਬਾਜ਼ ਦਾ ਗੀਤ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ 10.00
14. ਬੱਸ ਇੱਕ ਯਾਦ / ਲਿਓਨਿਦ ਆਂਦਰੇਯੇਵ 10.00
15. ਦਾਦਾ ਅਰਖ਼ੀਪ ਅਤੇ ਲਿਓਨਕਾ / ਗੋਰਕੀ 20.00
16. ਦਾਨਕੋ ਦਾ ਬਲ਼ਦਾ ਹੋਇਆ ਦਿਲ / ਗੋਰਕੀ 10.00
17. ਘਰ ਦੀ ਲਲਕ / ਨਿਕੋਲਾਈ ਤੇਲੇਸ਼ੋਵ 20.00
18. ਗੁੱਲੀ-ਡੰਡਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ 10.00
19. ਹਾਰ ਦੀ ਜਿੱਤ / ਸ਼ੁਦਰਸ਼ਨ 10.00
20. ਹਰਾਮੀ / ਮਿਖ਼ਾਇਲ ਸ਼ੋਲੋਖ਼ੋਵ 20.00
21. ਕਾਬੁਲੀਵਾਲ਼ਾ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ 10.00
22. ਮੁਸੀਬਤ ਦਾ ਸਾਥੀ / ਸੇਰੇਗਈ ਮਿਖਾਲਕੋਵ 10.00
23. ਪੋਸਟਮਾਸਟਰ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ 10.00

24. ਰਾਮਲੀਲਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ	10.00
25. ਸੇਮਾਗਾ ਕਿਵੇਂ ਫੜਿਆ ਗਿਆ / ਗੋਰਕੀ	10.00
26. ਤੁਰਦਾ-ਫਿਰਦਾ ਟੋਪ / ਐੱਨ. ਨੋਸੋਵ	10.00
27. ਬੇਜਿਨ ਚਰਾਗਾਹ / ਇਵਾਨ ਤੁਰਗੇਨੇਵ	20.00
28. ਉਲਟਾ ਰੁੱਖ / ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਚੰਦਰ	35.00
29. ਵੱਡੇ ਭਾਈ ਸਾਹਬ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ	10.00
30. ਇੱਕ ਛੋਟੇ ਮੁੰਡੇ ਅਤੇ ਕੁੜੀ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਜਿਹੜੇ ਬਰਫ਼ੀਲੀ ਠੰਡ 'ਚ ਕਾਂਬੇ ਨਾਲ਼ ਮਰੇ ਨਹੀਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	10.00
31. ਬਹਾਦਰ / ਅਮਰਕਾਂਤ	10.00
32. ਹਿਰਨੌਟਾ / ਦਮਿਤਰੀ ਮਾਮਿਨ ਸਿਬਿਰੇਆਕ	10.00

——::——

नवें समाजवादी इन्क़लाब दा बुलारा

प्रतिबद्ध (तिमाही पंजाबी पत्रिका)

सम्पादकीय कार्यालय : शहीद भगतसिंह भवन
सीलोआनी रोड, रायकोट, लुधियाना- 141109 (पंजाब)
फोन : 09815587807 **ईमेल :** pratibadh08@rediffmail.com
ब्लॉग : http://pratibaddh.wordpress.com

एक अंक : 50 रुपये *वार्षिक सदस्यता :*
डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 150 रुपये विदेश : 50 अमेरिकी डॉलर या 35 पौण्ड

तब्दीली पसन्द विद्यार्थियाँ-नौजवानाँ दी

ललकार (पाक्षिक पंजाबी अखबार)

सम्पादकीय कार्यालय : *लखविन्दर* सुपुत्र मनजीत सिंह
मुहल्ला - जस्सडाँ, शहर और पोस्ट ऑफ़िस - सरहिन्द शहर,
जिला - फ़तेहगढ़ साहिब-140406 (पंजाब) फोन : 096461 50249
ईमेल : lalkaar08@rediffmail.com **ब्लॉग :** http://lalkaar.wordpress.com

एक अंक : 5 रुपये *वार्षिक सदस्यता :* डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 120 रुपये

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि ...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह

जनचेतना

मुख्य केन्द्र : **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

फ़ोन : 0522-4108495

अन्य केन्द्र :

- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001, फ़ोन : 7398783835
- दिल्ली : 9999750940
- नियमित स्टॉल : कॉफ़ी हाउस के पास, हज़रतगंज, लखनऊ शाम 5 से 8 बजे तक

सहयोगी केन्द्र

- जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाना (पंजाब) फ़ोन : 09815587807

ईमेल : info@janchetnabooks.org

वेबसाइट : www.janchetnabooks.org

हमारी बुकशॉप और प्रदर्शनियों से पुस्तकें लेने के अलावा आप हमसे डाक से भी किताबें मँगा सकते हैं। हमारी वेबसाइट पर जाकर पुस्तक सूची से पुस्तकें चुनें और ईमेल या फोन से हमें ऑर्डर भेज दें। आप मनीऑर्डर या चेक से या सीधे हमारे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। आप वेबसाइट पर दिये Instamojo के लिंक से भी भुगतान कर सकते हैं। हमारी किताबें आप Amazon और Flipkart से भी ऑनलाइन मँगा सकते हैं।

बैंक खाते का विवरणः

ACC. NAME: JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI

Acc. No. 0762002109003796

Bank: Punjab National Bank

यदि आपको महज़ मनोरंजन चाहिए,
महज़ नशे की एक ख़ुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख़याल
तो नहीं हैं ऐसी किताबें हमारे पास।
हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोहनिद्रा झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात पर
आपको सोचने के लिए मजबूर कर दें।
हम किताबें नहीं
लड़ने की ज़िद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की तड़प।
किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

जनचेतना

एक सांस्कृतिक मुहिम
एक वैचारिक प्रोजेक्ट
वैकल्पिक मीडिया का एक मॉडल